R.N.I. No. 2321/57
ओ३म्
रजि. सं. MTR नं. 004/2019-21
दिसम्बर 2020
अंक 11

तपोभूमि

मासिक

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
दिनांक

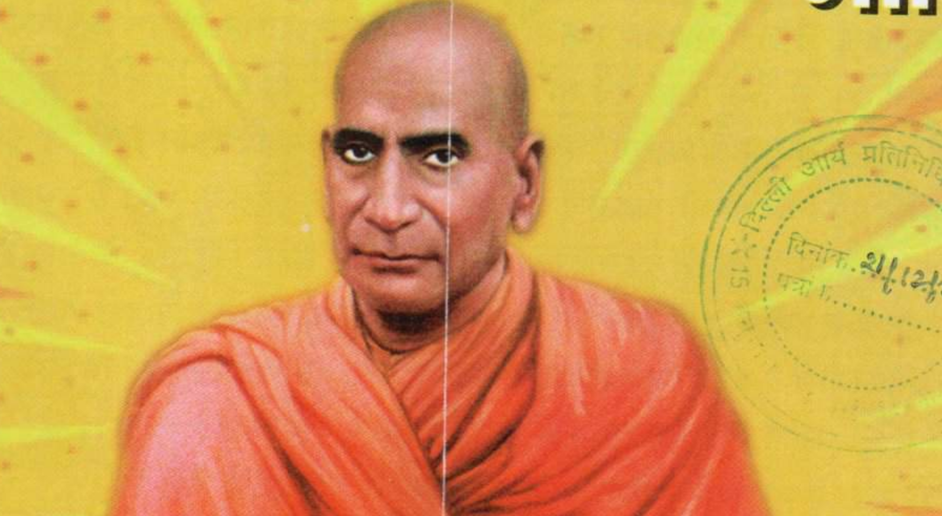

अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती
(1856–1926)
23 दिसम्बर बलिदान दिवस

23 दिसम्बर
बलिदान दिवस पर

सम्पादकीय

आर्य संस्कृति के पर्याय थे स्वामी श्रद्धानन्द

स्वामी श्रद्धानन्द को जिन्होंने पढ़ा है उनके सामने स्वामी श्रद्धानन्द का नाम श्रवण होते ही वैदिक आर्य संस्कृति का साकार रूप सामने उपस्थित हो जाता है। आर्य कैसे होते हैं? इसका सीधा उत्तर है स्वामी श्रद्धानन्द जैसे। आर्यत्व के ऐसे कौन से गुण शेष हैं जो स्वामी श्रद्धानन्द के दृष्टिगोचर नहीं होते अर्थात् सम्पूर्ण रूप से जिसे आर्य कहें तो वे स्वामी श्रद्धानन्द थे। प्रातः स्मरणीय भारत गौरव आर्य संस्कृति के उद्धारक प्राणिमात्र के शुभ चिन्तक अनन्य प्रभुभक्त महर्षि दयानन्द जी महाराज के प्रवचनों से क्रान्तिकारी परिवर्तन स्वामी श्रद्धानन्द में आया वह अन्यत्र दुर्लभ है। कहते हैं चुम्बक लोहा को ही आकर्षित करती है मिट्टी के ढेले को नहीं क्योंकि लोहे में ही वे क्रियाशील तत्व विद्यमान हैं जो चुम्बकीय शक्ति से आकर्षित होते हैं। इसी प्रकार से महापुरुष के आकर्षक व्यक्तित्व से वही व्यक्ति प्रभावित होते हैं जिनमें संवेदनशील तत्व उपस्थित होते हैं अन्य लोग नहीं। स्वामी श्रद्धानन्द नाम के ही श्रद्धानन्द नहीं थे वे काम से भी श्रद्धानन्द थे। जिस तत्व के द्वारा हम महान् गुणों के प्रति आकर्षित होते हैं उस तत्व का नाम ही तो श्रद्धा है जो हमारे चरित नायक में प्रारब्धवश कूट-कूट के भरी थी।

स्वामी श्रद्धानन्द ने महर्षि दयानन्द जी महाराज के क्षणिक सत्संग को प्राप्त कर ऐसी ऊर्जा प्राप्त की कि वे महर्षि के संसार से जाने के बाद उनके सम्पूर्ण साहित्य को पढ़कर वैदिक साहित्य के मर्मज्ञ बने और वैदिक संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली के पुनः संस्थापक बने। गुरुकुल कांगड़ी जिसका जीता जागता उदाहरण है। महर्षि दयानन्द के उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिए उन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जाकर ज्ञान प्राप्त किया और फिर उसको क्रिया में उतारा। नारी शिक्षा के महत्व को समझकर उन्होंने कन्या विद्यालय खुलवाये, दीनहीनों की सहायता के लिए जगह-जगह अनाथालय बनवाये। अछूतो उद्धार का अभियान चलाया। जलियाँवाला हत्याकाण्ड होने के बाद कोई भी कांग्रेस का अधिवेशन कराने का साहस नहीं कर पा रहा था। तब आगे बढ़कर अपने नेतृत्व में कांग्रेस का अधिवेशन करवाया। स्वतंत्रता आन्दोलन में गति प्रदान कर देश में नई ऊर्जा का संचार किया यही नहीं जो भाई परिस्थितिवश वैदिक संस्कृति की पावन गोद से छिटककर ईसाई और मुसलमान बन गये थे जिनके लिए

-शेष पृष्ठ संख्या 35 पर

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–66 | संवत्सर 2077 | दिसम्बर 2020 | अंक 11

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादकः
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

दिसम्बर 2020

सृष्टि संवत्
1960853120

दयानन्दाब्दः 196

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा (उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाषः
0565–2406431
मोबा0 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
मानस के अनुसार गृहस्थाश्रम	–रामस्वरूप आर्य	5–6
स्वास्थ्य चर्चा	–	7
महर्षि दयानन्द के जीवन में कितनी	–खुशहालचन्द्र आर्य	8–10
वर्ण जाति और राष्ट्र	–	11–12
जाति कर्म संस्कार का रहस्य	–महात्मा आनन्द स्वामी	13–14
साहित्य–सृजन के पांच दशक	–डॉ0 भवानीलाल भारतीय	15–17
गोमेध का सच्चा अर्थ	–पं0 दामोदर सातवलेकर	18–21
स्वदेश भक्ति	–	22
उपनिषद् क्या हैं?	–डॉ0 सत्यदेवसिंह	23–25
उपासना और महर्षि दयानन्द	–स्वामी सत्यानन्द	26–28
श्रद्धामूर्ति स्वामी श्रद्धानन्द	–प्रकाशवती शास्त्री	29–31
मानव जीवन का आदर्शः	–डॉ0 भवानीलाल भारतीय	32–33
चतुर्वेद पारायण यज्ञ		34

वार्षिक शुल्क 150/–　　　पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

लेखकः डॉ० रामनाथ वेदालंकार

धन के उपहार आहुति देकर ही ग्रहण करें

यदन्नमद्मि बहुधा विरूपं हिरण्यमश्वमुत गामजामविम्।
यदेव किं च प्रतिजग्रहाहमग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु।।

–अथर्व0 6।71।1

शब्दार्थः–

मैं (बहुधा) बहुत प्रकार से (यद् विरूपम् अन्नम्) जिस विविध रूपवाले अन्न को (अद्मि) खाता हूँ, तथा (हिरण्यम्) सुवर्ण, (अश्वम्) घोड़ा, (उत) और (गाम्) गाय, (अजाम्) बकरी, (अविम्) भेड़ (यत् किं च) जो कुछ भी (प्रतिजग्रह) दूसरों से उपहार में ग्रहण करता हूँ, (तत्) उसे (होता अग्निः) कर का आदाता कराधिपति (सुहुतं कृणोतु) सुहुत कर दे, अर्थात् उस पर आयकर लेकर उपयोग की स्वीकृति दे।

भावार्थः–

मैं स्वयं अपने परिश्रम से तो धन–सम्पदा कमाता ही हूँ, परन्तु मुझे अन्यों से उपहाररूप में भी बहुत–सी वस्तुएँ मिल जाती हैं। उनमें कुछ वस्तुएँ बहुमूल्य भी होती हैं, जिन पर मुझे आयकर देना चाहिए। मैं धान, जव, उड़द, तिल, मूँग, चने, गेहूँ मसूर आदि अन्न स्वयं कृषि द्वारा उत्पन्न करके अथवा अपने धन से मोल लेकर भी खाता हूँ और कभी–कभी ऐसा भी होता है कि मेरे कोई सम्बन्धी जितनी अपनी खेती होती हैं, पूरे वर्ष भर का अन्न मुझे भिजवा देते हैं, जिसका मूल्य इतना हो जाता है कि उस पर आयकर लगना चाहिए। कभी हिरण्य, हीरे–जवाहरात आदि मूल्यवान् पदार्थ मुझे उपहार में मिल जाते हैं। कभी घोड़ा, गाय, बकरी, भेड़ आदि पशुओं का उपहार मुझे प्राप्त हो जाता है, कभी दूध–घी, दही आदि बड़े पैमाने पर प्रेमीजनों से मुझे मिल जाता है। इन सब उपहारों का मूल्य लगाऊँ तो वह इतना अधिक हो जाता है कि इस पर आयकर देना मेरा कर्तव्य हो जाता है। परन्तु मैं अपने मन को समझा लेता हूँ कि उपहारों को अपनी आय में भला कौन जोड़ता है।

आज वेदमन्त्र मुझे मेरे कर्तव्य का बोध करा रहा है। वेद कह रहा है कि विविध अन्न, इतर खाद्य और पेय पदार्थ, सोना, चाँदी, हीरे, मोती, गाय आदि पशु, खेत, कोठी जो मैंने किसी से भेंट में लिये हैं, उनके उपयोग से पहले मैं उन्हें सुहुत कर लूँ, उन पर जो देव आयकर बनता है, वह मैं दे लूँ। होमनिष्पादक अग्नि मुझे यह सुहुत करने की शिक्षा दे रहा है। अग्निहोत्र की अग्नि को जो हम घृत, हवन–सामग्री, मेवा, मिष्टान्न आदि अर्पित करते हैं, उन्हें वह उनकी सुगन्ध फैला स्थानान्तर में पहुँचा देता है। वैसा ही हम भी करें। जो हमारी आवश्यकता से अधिक है, उसे हम दीन–दुःखियों में बाँट दें और उन पर जो राजदेय कर है उसे चुकायें। ❁

रामचरितमानस में वीरभावना तथा प्रेरणा

लेखकः रामस्वरूप आर्य, एटा (उ. प्र.)

मुगल साम्राज्य जब यौवनकाल पर था, उस समय बड़े-बड़े राजे महाराजे (कुछ को छोड़कर) मुगल शासनाधीशों की आधीनता स्वीकार करके उनके अनुयायी बने हुये थे। मानो भारतीय वीरों का वीरत्व श्री हीन हो गया हो। कुछ क्षत्रियों में प्रतिशोध की भावना उबाल ले रही थी किन्तु आपस की फूट के कारण उन बेचारों पर भी तुषारापात जैसा हो गया था। ऐसे घोर संकट-काल में श्री गोस्वामी जी महाराज ने भारतीयों को अपने अतीत का गौरव स्मरण कराया। गोस्वामी जी महाराज ने इस सन्दर्भ में लंका के राक्षसों की तुलना यवन शासकों से करके श्री रामचन्द्र जी के महापौरुष तथा उनके महान वीरत्व का परिचय कराया।

चौ० कामरूप जाने सब माया। सपनेहु जिनके धर्म न दाया।।
दस मुख बैठ सभा एक बारा। देख अमित आपन परिवारा।।
सैन विलोक सहज अभिमानी। बोला वचन क्रोध मद सानी।।
सुत समूह जन परिजन नाती। गिनै को पार निसाचर जाती।।
देखत भीम रूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी।।
करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरिहिं कर माया।।
जेहि विधि होई धर्म निर्मूला। सो सब करहिं वेद प्रतिकूला।।
जेहिंजेहिं देश धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं।।

दोहा बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहि।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनिमित।।

-(बाल काण्ड)

पाठकगण विचार करेंगे कि श्री गोस्वामी जी महाराज ने तात्कालिक शासनाधीशों का वास्तविक चित्र-चित्रण करके भारतीयों को कितना सजग किया है। आगे गोस्वामी जी महाराज भगवान् राम के महान पौरुष का वर्णन करने उन क्रूर कर्मियों से हम आर्यों को जूझने की प्रेरणा देते हैं।

हमारे समाज की कमजोरी यह है कि हम रामचरितमानस को मात्र पूजा पाठ की पुस्तक समझ कर उसकी आरती उतारते रहते हैं अथवा अखण्डपाठ कराकर अपनी भक्ति भावना की इतिश्री समझ लेते हैं। जिस देश काल परिस्थिति के आधार पर गोस्वामी जी महाराज ने इस काव्य को लिखा था उस पर विचार नहीं करते। श्रीराम को वीरत्व का आधार मान कर गोस्वामी जी महाराज के सन्देश

को पढ़ें–

सो० पुरुष सिंह दोऊ वीर हरषि चले मुनि भय हरन।
कृपा सिन्धु मति धीर अखिल विस्व कारन करन।।

चौ० अरून नयन उर बाहु विशाला। नील जलज तनु स्याम तमाला।।
कटि पट पीत कसे बर भाथा। रुचिर चाप सायक दोउ हाथा।।
प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय यज्ञ करउ तुम जाई।।
होम करन लागे मुनि झारी। आप रहे मख की रखवारी।।
सुन मारीच निसाचर क्रोही। लै सहाय धावा मुनि द्रोही।।
बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत योजन गा सागर पारा।।

खर, दूषण त्रिसिरा को ललकारते हुए श्रीराम कहते हैं–

हम छत्री मृगया बन करहीं। तुमसे खलमृग खोजत फिरहीं।।
रिपु बलवन्त देखि नहीं हरहीं। एक बार कालहु सन लरहीं।।
कहउँ स्वभाव न कुलगे हि प्रसंशी। कालह डरयं न रण रघुवंशी।।
जो न होइ वल घर फिर जाहू। समर विमुख मैं हतउँ न काहू।।

वन में ऋषियों के साथ जाते हुए श्री राम पूछ्ते हैं–

चौ० अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछी मुनिन लागी अति दाया।।
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुवीर नयन जल छाए।।

दो० निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ प्रण कीन्ह।
सकल मुनिन के आश्रमन जाय–जाय सुख दीन्ह।।

मान्यवर ! यों तो राम तथा राम के साथी हनुमान आदि के मानस में अनेकों ऐसे प्रसंग हैं। उनमें से कुछ ही प्रेरणाप्रद प्रस्तुत किये हैं। ❁

पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से विनम्र निवेदन है जिन्होंने वर्ष 2019 तथा 2020 का वार्षिक शुल्क बार–बार के पत्र लेखन तथा फोन द्वारा सूचना देने के बाद भी अभी तक जमा नहीं कराया है। वे वर्ष 2021 के वार्षिक शुल्क के साथ अविलम्ब 'सत्य प्रकाशन' वेदमन्दिर, वृन्दावन मार्ग, मथुरा के कार्यालय को जमा करायें। शुल्क जमा न होने की स्थिति में पत्रिका बन्द कर दी जायेगी। आशा और विश्वास है कि पाठकगण अविलम्ब शुल्क भेजकर अपनी पत्रिका समयानुसार प्राप्त करते रहेंगे। जो महानुभाव ऑन लाइन द्वारा शुल्क जमा करते हैं वे फोन द्वारा कार्यालय को सूचित अवश्य करें ताकि उनका शुल्क जमा किया जा सके। वे पाठकगण धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने समय से वर्ष 2020 का शुल्क जमा किया है।

–व्यवस्थापक

स्वास्थ्य चर्चा

विरेचन (जुलाब)

1. रूमी मस्तगी 3 ग्राम, मिश्री 6 ग्राम, दोनों को बारीक पीसकर पुड़िया बना लें। यह एक मात्रा है।

रात्रि में सोते समय दूध या गर्म पानी से लें। 3–4 दिन लगातार लेने से कोष्ठवद्धता (कब्ज) से सदा के लिए छुटकारा मिल जाता है।

2. जुलाफा हरड़ 3 ग्राम मिश्री 3 ग्राम, दोनों को बारीक पीसकर फांकने और ऊपर से गर्म जल पीने से कब्ज दूर होती है। चाहे कैसा ही सख्त मेदा (कोठा) क्यों न हो, यह दवा व्यर्थ नहीं जा सकती।

3. स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी) के बीजों को हाथ में लेकर कई बार जोर–जोर से दबाने से टट्टी की हाजत हो जाएगी और दस्त आ जाएगा।

4. सोये के बीजों को पानी में पीसकर गुदा पर लेप कर दें। तुरन्त दस्त होगा। अनुभूत है।

विषनाशक

1. रीठे के छिलकों का बारीक चूर्ण करके पीनी से चने के बराबर गोलियाँ बना लें। यह एक गोली खिलाकर गौ का दूध पिलाते रहें। इससे पागल कुत्ते, गीदड़ और सर्प–काटे का विष शान्त होता है और रोगी मौत के मुंह से भी बच जाता है।

2. चाहे कोई भी विष खा लिया हो, खाये हुए विष के बराबर भुना हुआ सुहागा खाने से सब विष नष्ट हो जाएगा।

सुहागे के गुनगुने पानी या दूध में घोलकर पिलाएँ।

शय्यामूत्र

1. आँवले सूखे, काला जीरा, दोनों समभाग लेकर कूट–पीसकर कपड़छन कर लें। प्रतिदिन प्रात:सायं 3 ग्राम ओषधि शहद के साथ चटाएँ। इससे शय्या मूत्र का रोग नष्ट हो जाता है।

2. जामुन की गुठली का चूर्ण पानी के साथ फँकाने से यह रोग दूर होता है।

3. असगन्ध और जटमासी, दोनों 10–10 ग्राम का काढ़ा बनाकर तीन दिन दें।

पथ्य पर विशेष ध्यान दें। इन्हें आहार में अंगूर, अनार, जामुन, छुहारे, गूलर, तिल और चना दें। इनके सेवन से बिना ओषधि के भी रोग दूर हो जाता है। रोगी को जल कम दें, थोड़ी–थोड़ी मात्रा में कई बार पिलाएँ, इकट्ठा न दें।

4. आँवले का चूर्ण 1 ग्राम, काले जीरे का चूर्ण 1 ग्राम, मिश्री 2 ग्राम, तीनों को मिलाकर फांक लें और ऊपर से थोड़ा–सा ठण्डा जल पी लें। शय्यामूत्र रोग नष्ट हो जाता है। –(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

"महर्षि देव दयानन्द के जीवन में कितनी बार आये मृत्यु प्राप्ति के क्षण"

लेखकः–खुशहालचन्द्र आर्य, महात्मा गांधी रोड, कोलकाता

4– राव कर्णसिंह से सामनाः– स्वामी जी विभिन्न स्थानों से धर्म चर्चा और पाखण्डों का खण्डन करते हुए सम्वत् 1825 (सन् 1868 ई0) के ज्येष्ठ मास में कर्णवास पहुँच गये। उस समय कर्णवास में गंगा के मेले की धूम थी। उस अवसर पर करौली के रईस राव कर्णसिंह भी अपने दल–बल सहित गंगा स्नान के लिए आये हुए थे। उन्होंने एक ओर गंगा के किनारे मण्डप बनवा रासलीला का आयोजन किया। मेले में पधारे सभी साधु–सन्तों और पण्डितों को उसमें आमन्त्रित किया। उसका आमन्त्रण महर्षि जी को भी मिला, परन्तु महर्षि जी उसमें सम्मिलित नहीं हुये और रासलीला का खण्डन करते रहे। अगले दिन राव कर्णसिंह अपने समर्थकों सहित महर्षि जी की कुटिया पर आ पहुँचे और क्रुद्ध होकर बोले "सभी साधु सन्त हमारी रासलीला में पधारे! आप क्यों नहीं आये? महर्षि जी उसकी भाव–भंगिमाओं से उसका उद्देश्य समझ गये थे। उन्होंने उत्तर दिया–"हम ऐसे निन्दनीय कृत्यों में सम्मिलित नहीं होते हैं।"

क्रोध से उसके नेत्र लाल हो गये। वह गरजकर बोला "आप रासलीला को निन्दनीय कृत्य कहते हैं, आप गंगा और अवतारों की निन्दा करते हो। मैं इनकी निन्दा करने वालों के साथ अच्छा वर्ताव नहीं करता हूँ। आपको सम्भल कर बोलना चाहिए और उसका हाथ तलवार की मूठ पर चला गया। महाराज के उपदेश सुन रहे सज्जनों के चेहरे पर अनिष्ट घट जाने के भाव अंकित होने लगे। परन्तु महर्षि जी सहज भाव से बोले "हम किसी की निन्दा नहीं करते हैं, जिसे जैसा देखते हैं वैसे ही कहते हैं। हमारे सामने कोई हमारे महापुरुषों का स्वांग भरे और हम उसे देखते रहें, यह कार्य अति निन्दनीय है। अति निर्बल व्यक्ति भी अपने पूर्वजों के स्वांग को सहन नहीं कर सकता। आप अपने महापुरुषों का ऐसे व्यक्तियों द्वारा स्वांग कराते हो जो आचरण पतित है। ऐसे कार्य करते हुए लज्जा आनी चाहिए।

महर्षि जी यह वार्ता सुनकर राव कर्णसिंह आपे से बाहर हो गये। वे अपनी तलवार लेकर उठ खड़े हुऐ। उनके साथ उनके समर्थक भी खड़े हो गये। शस्त्र भी उनके पास थे। ऐसा देखकर श्रद्धालुजन घबरा गये, परन्तु महर्षि जी ने मुस्कराते हुऐ कहा–"कर्णसिंह साधुओं से शास्त्रार्थ किया जाता है। यदि आपको शस्त्रार्थ करना ही है तो फिर महाराजा जयपुर या जोधपुर से जाकर भिड़ना चाहिए और यदि शास्त्रार्थ करना चाहते हो तो वृन्दावन से अपने गुरु रंगाचार्य को ले आइए।

गुरु का नाम सुनते ही राव कर्णसिंह की आँखों में खून उतर आया उसने तलवार को म्यान से बाहर निकाल लिया और महर्षि जी को अपशब्दों से सम्बोधित किया। यह दृश्य देखकर श्रोताओं की सांसें रुक गईं। राव कर्णसिंह क्रोध में अन्धा हो गया था। उसने तलवार वाला हाथ ऊँचा किया और महर्षि जी की ओर बढ़ा। महर्षि जी सम्भल कर बैठे हुए थे। उन्होंने स्फूर्ति के साथ उसका खड्ग वाला

हाथ की कलाई से पकड़ लिया और इतने बल से दबाया कि उसके हाथ से तलवार छूट गई। उसे पसीना आ गया, चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। महर्षि जी ने बाएं हाथ से तलवार की मूठ पकड़ उसकी नोंक को धरती पर टेक कर इतने जोर से दबाया कि तलववार के दो टुकड़े हो गये। महर्षि जी ने कहा-"हम संन्यासी हैं! जाओ परमात्मा तुम्हारा हित करें और तुम्हें सद्बुद्धि प्रदान करें।

5- स्वार्थी जनों द्वारा स्वामी जी की प्राण-हानि का प्रयासः- भारतवर्ष में उस समय महर्षि देव दयानन्द ही ऐसे अकेले साधु थे जो धर्मान्धिता, छुआ-छूत, अन्धविश्वास, पाखण्ड, जातिगत भेदभाव और अशिक्षा के विरुद्ध जूझ रहे थे। प्रबुद्ध लोग उनके अनुयायी बन सद्धर्म प्रचार में सहयोगी हो गये थे। परन्तु पाखण्डी और ढोंगी लोग उनके प्राण लेने में उतर गये थे।

शहबाजपुर (उ0 प्र0) में रहते हुए ठाकुर गंगासिंह उनके भक्त बन गये थे। नित्य उनके प्रवचन सुनने जाते। एक दिन दो वैरागी बाबा ठाकुर गंगासिंह जी के पास आये और उनसे कुछ समय के लिए अपनी तलवार दे देने के लिए कहा। उन्होंने तलवार लेने का कारण पूछा तो वे आवेश में बोले-"गप्पाष्टिक दयानन्द के जीवन का हम अन्त कर देना चाहते हैं। वह देवी-देवताओं का अपमान करता है। भागवत् का खण्डन करता है। अब वह हमारे हाथों से बचकर कहीं नहीं जा सकता।

ठाकुर गंगासिंह ने कहा-"वे तो उत्तम साधु हैं। उनका संग करने के बाद ही आप उनको समझ सकोगे। याद रखना इस विचार को लेकर पुनः मेरे पास आने का साहस न करना। अन्यथा इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। ऐसा सुनकर वे चले गये। इसके उपरान्त ठाकुर साहब महर्षि जी की सेवा में पधारे और उन्हें वैरागियों की पूरी घटना कह सुनाई। महर्षि जी मुस्कराते हुए बोले "मेरा वध करने का सामर्थ्य उनमें नहीं है। आप निश्चिन्त होकर विश्राम करिये।" इस पर भी गंगासिंह ठाकुर पूरी रात महर्षि जी की सेवा में प्रहरी की तरह जागते रहे।

6- वैष्णव मतावलम्बी द्वारा महर्षि जी की प्राणहरण की चेष्टाः- आश्विन सुदी 12 संवत् 1931 (सन् 1874 ई0) को महर्षि जी ने मुम्बई निवासियों के आग्रह पर उस नगर में प्रवेश किया। नगरवासियों ने रेलवे स्टेशन पर उनका भव्य स्वागत किया और गोसाईयों के अखाड़े में बालुकेश्वर पर उनको ठहरा दिया। श्रोताओं की संख्या अधिक होने के कारण कोट मैदान में एक विशाल मण्डप का प्रबन्ध किया गया। महर्षि जी के प्रवचनों को सुनने के लिए हजारों की संख्या में लोग सभा भवन पर नित्य ही उपस्थित होते। पाखण्ड की रीढ़ पर चोट करने से महर्षि जी कभी नहीं चूकते थे, इसलिए महर्षि जी जहाँ भी जाते वहीं विरोधियों की भी कमी न होती। उस समय मुम्बई में वैष्णव मत का अच्छा प्रभाव था। उनका प्रचार था कि तन, मन, धन सब गुरु के अर्पण। महर्षि जी ने इसका घोर विरोध किया। जब सर्वस्व ही गुरु को समर्पित कर दिया तो परिवार व समाज के लिए क्या शेष रह गया? इस समर्पण की आड़ में अवांछित घटनाएं घट जाने की सम्भावना बनी रहती है। यह सुनकर वैष्णव मतावलम्बी जीवन गोसाई महर्षि जी पर अति क्रोधित हुआ। इस बात की जानकारी महर्षि जी को हो गई थी। उसने अपने षडयन्त्र का माध्यम

महर्षि जी के सेवक बलदेव सिंह को बनाया। बलदेव लोभ में फंस गया। एक हजार रुपयों की राशि के मोह ने उसे अन्धा बना दिया। जीवन गोसाई खुश था। वह समझता था कि बलदेव महर्षि जी का विश्वास पात्र सेवक है। भोजन में विषादि देने में उसे कोई असुविधा नहीं होगी। उसने बलदेवसिंह को महर्षि जी का देहावसान हो जाने पर एक हजार रुपये देने के लिए लिखित आश्वासन दे दिया और पांच रुपये और एक सेर मिठाई अग्रिम उसे दे दी थी।

जब बलदेव महर्षि जी के सामने आया तब उसके चेहरे के भाव महर्षि जी को बदले–बदले लगे। उनके मन में सन्देह उत्पन्न हो गया। उन्होंने उससे पूछ लिया–गोसाईयों के यहां गया था? बलदेवसिंह का शरीर कांपने लगा। उसने गर्दन हिलाकर हां भी भरी। महर्षि जी मुस्कुराए और बोले– तो दयानन्द के सांसों का हरण करने के लिए कितने मैं सौदा तय हुआ? बलदेवसिंह महर्षि जी के चरणों में गिर पड़ा और उसने पूर्व घटी पूरी घटना कह सुनाई। उसने क्षमा कर देने के लिए महर्षि से प्रार्थना की और भविष्य में गोसाईयों के यहाँ न जाने की प्रतिज्ञा की।

महर्षि जी ने उसे क्षमा कर दिया, परन्तु उसको अपने पास नहीं रखा। जीवन गोसाई अपने इस षडयन्त्र में सफल नहीं हुआ, तो उसने दूसरी चाल चली उसने भाड़े पर चार गुण्डे महर्षि दयानन्द की हत्या कर देने के लिए तैयार किये। महर्षि जी नित्य नियम से समुद्र तट पर भ्रमण के लिए जाया करते थे। वे गुण्डे महर्षि जी का पीछा करने लगे। महर्षि जी को समझते देर नहीं लगी। एक दिन महर्षि जी उसके सामने खड़े हो गये और गम्भीर वाणी में कहो "तुम मेरी हत्या करना चाहते हो?" महर्षि जी बोलते ही उनके पैरों तले जमीन खिसक गई। वे कुछ देर तक भी उनके सम्मुख खड़े नहीं हो सके। जीवन गोसाई इतना भयभीत हुआ कि उसने मुम्बई छोड़ दी। वह मद्रास भाग गया।

वैसे तो स्वामी जी को सत्तरह बार विष दिया गया, परन्तु इन्होंने न्यौली क्रिया द्वारा विष को बाहर निकाल दिया जिससे एक घटना अधिक प्रचलित है कि एक धर्मान्ध ब्राह्मण ने स्वामी जी को पान में विष दे दिया। एक सैयद मोहम्मद नामक तहसीलदार जो स्वामी जी का अनन्य भक्त था उसको मालुम पड़ने से उस ब्राह्मण को जेल में डाल दिया और स्वामी जी को यह सारी बात बताई। स्वामी जी ने कहा कि हम तो लोगों को बन्धनों से मुक्ति दिलाने आये हैं, बन्धन कराने नहीं। तब तहसीलदार ने उस दोषी को छोड़ दिया। काशी के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ के समय भी पण्डित लोगों ने गुण्डे बदमाशों को अपने साथ ले जाने के लिए बुला रखा था। जिससे वे अपनी हार को छिपाने के लिए उनसे स्वामी जी के ऊपर ईंटें, पत्थर फिंकवाकर हल्ला–गुल्ला करवा सके। वैसा ही किया भी परन्तु रघुनाथ सहाय जो स्वामी जी का परम भक्त था उसने स्वामी जी की जान बचा ली। एक बार स्वामी जी अलकनन्दा बर्फीली नदी में उस पार जाने के लिए नदी में उतर गये और काफी कष्ट सहा। इसी प्रकार स्वामी जी नर्मदा नदी के तट पर जाते हुए उनको भीषण व भयंकर जंगलों की खाक छाननी पड़ी और जंगली भयंकर जानवरों से अपनी जान बचाई। परन्तु इस लेख में केवल छः बड़ी घटनाओं का विवरण किया है।

आशा है सुधी पाठकगण इस लेख को पढ़कर अपने ज्ञान की वृद्धि करेंगे जिससे मेरा परिश्रम भी सार्थक होगा। ❁

वर्ण जाति और राष्ट्र

वैदिक काल के पश्चात् जब स्मृतिकाल में वर्ण को जन्ममूलक मान लिया गया तब जाति के जन्म सिद्ध होने के कारण वर्ण और जाति शब्द पर्यायवाची समझ लिए गए। अब आधुनिक साहित्य लेखकों ने भी राष्ट्र शब्द के स्थान पर जाति शब्द का प्रयोग करके राष्ट्र और जाति शब्द को एक अर्थ वाला बना दिया है जिसके कारण भारतीय समाज में बहुत भ्रान्ति फैल गई है। अर्थात् जिसके कारण भारतीय और विदेशी लोग जहाँ ब्राह्मणादि चारों वर्णों को चार जातियाँ कहने और लिखने लग गये हैं, वहाँ वर्तमान समय की कल्पित वंशीय जातपात को भी वर्ण तथा जाति के भेद के साथ सम्मिलित कर दिया गया है जिससे भारतीय समाज खण्ड-2 हो गया है। परन्तु वस्तुतः न तो वर्ण और जाति शब्द पर्यायवाची हैं और न जाति और राष्ट्र ही। न तो जाति, वर्ण की भांति कार्य मूलक ही है और न राष्ट्र की भांति वह देश विशेष की सीमा में ही बद्ध है। वर्ण शब्द का वर्णन इस पुस्तक के पृष्ठों में भली प्रकार कर दिया गया है, जिसे अत्यन्त संक्षेप से इस प्रकार कह सकते हैं-वर्णों वृणुते-अर्थात् वर्ण का वरण किया जाता है (चुना जाता है) अथवा मनुष्य अपनी आजीविका के लिए जिस लौकिक व्यवहार सिद्धि के कार्य को स्वीकार करता है उसके अनुसार ही उसका वर्ण बनता है। जहाँ वर्ण व्यक्तिगत है, वहाँ वर्ण परिवर्तित भी हो सकता है।

जाति का धातुज अर्थ उत्पत्ति अथवा जन्म है। न्याय शास्त्र में जाति का लक्षण इस प्रकार किया गया है-

'आकृतिजातिलिंगाख्या' '

अर्थात् जिन व्यक्तियों की आकृति (इन्द्रियादि) एक समाज हों, उन सबकी एक जाति है। जैसे सब मनुष्य एक जाति, सब घोड़े एक जाति और सब गाय एक जाति हैं। अतः यह जाति जन्म सिद्ध होने से परवर्तित नहीं हो सकती।

"सतिमूले तद्विपाका जात्यायुर्भोगः"

योग दर्शन के भाष्यकार ऋषिवर व्यास देव जी ने भी सूत्र का भाष्य करते हुए जाति को आजीवन ही अपरिवर्तनीय माना है।

राष्ट्र के अर्थ कौम अथवा नेशन हैं जो कि देश विशेष की सीमा से बनता है-अर्थात् जो व्यक्ति एक देश विशेष को सीमा के अन्दर रहने वाले हैं और जिनकी सभ्यता, संस्कृति, भाषा, साहित्य और त्यौहार आदि एक समान हैं। वह सब एक राष्ट्र के अन्तर्गत हैं। चाहे उनके वर्ण भिन्न-भिन्न ही हों। अतः पूर्वोक्त वर्णन से विदित है कि न तो जाति वर्ण की भांति कार्य मूलक है और न ही राष्ट्र की भांति देश

विशेष की सीमा में बद्ध हैं, अपितु जहाँ वर्ण शब्द अपने सहकारी मनुष्यों और राष्ट्र शब्द एक देश की सीमा में रहने वाले स्वदेश वासियों को परस्पर एकत्रित करता है वहाँ जाति शब्द अपनी नैसर्गिक व्यापकता से सारे मानवीय संसार को सार्वभौम भ्रातृत्व के नाते से संगठित करके मनुष्य मात्र को उनकी जातीय समानता की सद्भावना द्वारा विश्व-प्रेम का सन्देश भी देता है। परन्तु खेद है कि वंशीय तथा देशीय सीमा के पक्षपातियों ने भ्रांतिवश न केवल जाति शब्द के इस वैदिक सार्वजनिक श्रेयात्मकभाव को ही मिटा दिया है, अपितु जाति शब्द को घृणित तथा द्वेषात्मक भी बना दिया है।

जहाँ वंशीय सीमा के अभिमानियों ने वंशों की सीमा में सीमित गौड., कपूर और आधुनिक भारतीय अनगणित कुलों को जातियों का निरर्थक नाम देकर मनुष्य जाति को विभक्त करनेवाला अपने और बेगाने तथा ऊँच व नीच कुलीन व अकुलीन छूत व अछूत आदि का संकीर्ण भाव भारत में उत्पन्न कर दिया है, वहाँ देश सीमा के अभिमानी देश भक्तों ने भी देश की सीमा में सीमित जन समूहों को भिन्न-2 देशों की भिन्न-2 जातियों का नाम देकर उनके हृदय में परस्पर के लिए द्वेष का बीज वो दिया है। इससे स्पष्ट है कि इन दोनों ने ही जाति शब्द के दुरुपयोग से मनुष्य जाति के मनुष्यत्व के व्यापक नाते को विलुप्त करके मानवीय जगत् को अत्यन्त हानि पहुंचाई है। और इन दोनों में भेद इतना ही है कि भारतीय जातपात तो देश के आभ्यान्तरिक वैमनस्य और कलह का कारण है और देश की सीमा से सीमित धर्म शून्य जातीयता (राष्ट्रीयता) अपने देश से बाहर संसार भर के देशों को एक दूसरे का विरोधी और शत्रु बनाती है। अतः भारतीय लेखकों से निवेदन है कि वह 'वर्ण', 'जाति' और 'राष्ट्र' शब्दों का शस्त्रीय अर्थों में यथार्थ प्रयोग करके पाठकों को उक्त शब्दों की निरर्थक भूलभुलैयों से निकाल कर वास्तविक अर्थों का यथावत् बोध कराएँ, क्योंकि मन-माने अर्थों में इनका प्रयोग करने से वेदादि शास्त्रों का वास्तकवे अभिप्राय ज्ञात नहीं हो सकता। समाज सुधारक सज्जनों से भी प्रार्थना है वह उक्त शब्दों के अशुद्ध प्रयोग से मानव-समाज में जो जन्मसिद्ध पवित्रता अपवित्रता ऊँच-नीच तथा छूत-अछूत आदि का भ्रमात्मक व्यवहार हो रहा है, उसको दूर करके मानव समाज को परस्पर भ्रातृत्व के सूत में संगठित करके धर्म पूर्वक व्यवहार करना सिखलायें। ताकि मानव समाज को पुनः वैदिक काल के समान सुख शान्ति और समृद्धि की प्राप्ति हो। जैसाकि निम्नलिखित ऋग्वेद के मन्त्र में आदेश किया गया है-

अज्येष्ठासो अकनिष्ठासएते सं भ्रातरो।
वावृधुः सौभागय।। ऋ0 5। 60। 5।।

अर्थात् मनुष्यों में न कोई बड़ा और न छोटा है यह सब आपस में एक जैसे बराबर के भाई हैं। वह सब मिलकर लौकिक तथा पारलौकिक उत्तम ऐश्वर्य के लिए प्रयत्न करें। ❁

सत्साहित्य का प्रचार-प्रसार करना
राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

जात कर्म संस्कार का रहस्य

लेखक: महात्मा आनन्द स्वामी

बच्चा उत्पन्न होता है तो पिता उसका सबसे पहला संस्कार करता है। उसे नहला धुलाकर सोने की सलाई को शहद में भिगोकर उसकी जिव्हा पर लिखता है "ओ३म्" तब उसके कान में कहता है 'वेदोऽसि'--तू वेद है। आप कहेंगे यह संस्कार क्या हुआ? बच्चा ओ३म् और वेद को क्या समझेगा? परन्तु स्मरण रखिये बच्चा भी समझता है। उस समय जो कुछ भी आप उसे कहते हैं उसका प्रभाव उसके मन पर होता है। उससे पूर्व भी जब वह माता की कोख में होता है माता के विचारों का प्रभाव उस पर होता है। यह मनोविज्ञान की बात है। मनोविज्ञान को जानने वाले इसे समझते हैं। हमारे पूर्वज मनोविज्ञान को जानते थे। अतः उन्होंने इस संस्कार की आज्ञा दी।

पिता अपने पुत्र को कहता है। बच्चे! यह संसार भयानक जंगल है। इसमें व्याधियां हैं, बुराइयां हैं, पाप हैं। इस वन में तुझे आगे बढ़ना है। इसलिये एक साथी तुझे देता हूँ जिससे श्रेष्ठ दूसरा कोइ साथी नहीं। यह साथी ओ३म् है। इसके साथ ही मधु से ओ३म् लिखकर वह कहता कि देख जीवन की इस यात्रा में मधु की भांति मीठा बोलना। कड़वा नहीं बोलना और फिर सोने की सलाई से यह ओ३म् इसलिये लिखा कि तूने अपने आपको पवित्र बना। मूल्यवान् बन जिससे लोग तुझे सोने की भांति सम्भाल कर रखें। इस प्रकार आगे बढ़ो और इस साथी को याद रक्खो। संसार में दूसरे साथी भी मिलेंगे। पिता के लिये पुत्र, पुत्र के लिये पिता, पति के लिये पत्नी, पत्नी के लिये पति, भाई के लिये बहिन, बहिन के लिये भाई, मित्र, सम्बन्धी–ये सभी तेरे साथी होंगे।

ये सब साथी अच्छे हैं। मैं इनकी निन्दा नहीं करता। वेद भी नहीं करता, उनिषद् भी नहीं कहता, परन्तु ये सभी कुछ देर के साथी हैं। कुछ देर के पश्चात् मुख मोड़ लेते हैं। रूठ जाते हैं, चले जाते हैं।

पिता अपने बच्चों को कहता है, "ओ नन्हीं सी जान! मैं तुझे ऐसा साथी देता हूँ जो किसी भी समय तुझसे पृथक् नहीं होगा। जो प्रत्येक अवस्था में तेरे साथ रहेगा। जीवन में, मृत्यु में, सृष्टि में, प्रलय में, प्रतिवर्ष, प्रतिदिन, चौबीस घण्टे, प्रति मिनट, प्रति सैकिण्ड उस साथी के बिना यात्रा चल नहीं सकती।

दीप जले बिन बाती न। जीवन कटे बिन साथी न।।

यह साथी तुझे देता हूँ जिससे श्रेष्ठ साथी संसार में कोई दूसरा नहीं।

एतदालम्बनं श्रेष्ठं एतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते।।

यह कठोपनिषद् का सन्देश है।

इसका, ओ३म् का सहारा ही सबसे बड़ा सहारा है। यही सब से परम आश्रय है। इस सहारे को जान कर, इसको धारण करके केवल इस संसार में नहीं ब्रह्मलोक में भी महिमा को प्राप्त होता है।

किस संग कीजिये मित्रता सब जग चालन हार।
निश्चय केवल है प्रभु उस संग करो प्यार।।

वही सच्चा साथी है। वह साथी आज तुझे देता हूँ उसे भूलना नहीं।

अश्मा भव, परशुर्भव। हिरण्यमस्तृतं भव।।

पत्थर बन, कुल्हाड़ा बन, स्वर्ण की भांति चमक। आप कहेंगे यह क्या आशीर्वाद हुआ? बच्चे के उत्पन्न होने पर प्रसन्नता मनाई जा रही है। बाजे बज रहे हैं। गीत गाये जा रहे हैं, प्रकाश किया जा रहा है और पिता उसे कहता है, "तू पत्थर हो जा।" परन्तु सुनो इस संसार में कभी-कभी पत्थर भी बनना पड़ता है। पिता अपने बच्चे को कहता है, 'ओ मेरे छोटे से प्राण! यह संसार का जंगल सुनसान है यहाँ कितने ही पशु, कई पशु समान मनुष्य हैं-इसलिए अपने आपको शक्तिशाली बना। पत्थर की चट्टान बना कि आंधियां और तूफान और बबण्डर आये, बाढ़ आये और तुझे हिला न सके। समुद्र की लहरें उछलती हैं, ज्वार भाटा आता है, सागर में लहरें प्रलयकारी नृत्य करती हैं। यान और नौकायें डूब जाती हैं। हर ओर उथल-पुथल मच जाती है। परन्तु सागर में खड़ी हुई चट्टान, क्या वह भी समाप्त होती है! नहीं लहरें आती हैं, टकराती हैं, समाप्त हो जाती हैं, चट्टान ज्यूं की त्यूं खड़ी रहती हैं। लाखों तूफान, करोड़ों ज्वार-भाटे, अरबों लहरें भी उसको हिला नहीं सकतीं-पिता अपने पुत्र को विचार देता है-

बच्चे! ब्रह्मचर्य से अपने शरीर को इतना दृढ़ बना जैसे चट्टान होती है। परन्तु इस संसार के केवल चट्टान बनने से तो कार्य नहीं चलता। कभी-कभी कुल्हाड़ा भी बनना पड़ता है। जब अत्याचारी आप के देश पर, आपके धर्म पर, आपकी स्वतन्त्रता पर आक्रमण करे तब कुल्हाड़ा बन कर उस का सिर फोड़ देने की आवश्यकता होती है। अतः पिता अपने पुत्र को विचार देता है, बेटे! केवल पत्थर नहीं कुल्हाड़ा भी बन जिससे अन्याय और अत्याचार से, पाप और अनाचार से अपने देश धर्म जाति और परिवार की रक्षा कर सके। कुल्हाड़ा बन जिससे तेरी विद्यमानता में किसी दीन पर अन्याय न हो किसी निर्दोष का जीवन न छीना जाये, किसी देवी का सतीत्व भंग न किया जाये। कुल्हाड़ा बन खरबूजा न बन।

यह खरबूजा भी विचित्र वस्तु है। छुरी खरबूजे पर गिरे या खरबूजा छुरी पर कटता सदा खरबूजा ही है। नहीं, खरबूजा बनने से संसार में कार्य नहीं चलता। जो लोग खरबूजा बनने का प्रयत्न करते हैं वे न अपनी रक्षा कर सकते हैं न दूसरों की कर सकते हैं। लोग उन्हें खा जाते हैं। इसलिये कुल्हाड़ा बन। और जब ये दोनों बातें हो जायें तब- **हिरण्यमस्तृतं भव।**

फिर चमक मेरे बच्चे! स्वर्ण की भांति चमक। फिर तेरी चमक को रोकने वाली कोई शक्ति नहीं।

ये हैं विचार, दृढ़-संकल्प और आत्मविश्वास के विचार, जिन्हें बच्चों को देने की आज्ञा हमारे पूर्वजों ने दी। ❁

गतांक से आगे–

साहित्य–सृजन के पांच दशक

लेखकः डॉ० भवानीलाल भारतीय, जोधपुर (राज०)

गुजराती के अन्य दो ग्रन्थों के अनुवाद से मुझे विशिष्ट आनन्द तथा सन्तोष की उपलब्धि हुई। गुजराती के समर्थ उपन्यासकार केशु भाई देसाई का एक लघु उपन्यास 'सूरज बुझाव्या नुं पाप' मेरे मित्र नरेन्द्र दवे ने मुझे दिया। इस उपन्यास का कथानक काल्पनिक होते हुए भी यथार्थ की पृष्ठभूमि पर गूँथा गया है। स्वामी दयानन्द को विष देने वाले का कालान्तर में अपराध–बोध से व्यथित होना और घटनाओं के इसी क्रम में अन्ततः उसका अपने अपराध को स्वीकार करना इस उपन्यास में अत्यन्त कलात्मक ढंग से चित्रित किया गया है। इस रचना की एक अन्य विशिष्टता थी इसमें पालन किया गया संकलनत्रय का सिद्धान्त। उपन्यास का सम्पूर्ण कथानक एक ही स्थान, एक ही काल तथा सीमित पात्रों में आबद्ध है। विषदाता अन्ततः स्वीकार करता है कि स्वामी दयानन्द जैसे तेजस्वी और प्रज्ञा पुरुष को विष देकर उसने तेजस्वी सूर्य को बुझा देने जैसा पाप किया है। इस पर नागरवन महाराज (एक पात्र) उसे सान्त्वना देते हैं कि अपराध की स्वीकृति भी पाप के प्रायश्चित के तुल्य ही है। उपन्यास के रोचक कथानक, पात्रों के कमनीय चरित्र–चित्रण तथा उसकी आकर्षक शैली ने मुझे विमुग्ध किया और इसका हिन्दी अनुवाद करने की मेरी इच्छा हुई। उपन्यास के लेखक केशु भाई ने मुझे प्रसन्नता पूर्वक अनुवाद करने की अनुज्ञा दे दी और मैंने अपने पंजाब विश्वविद्यालय के सेवाकाल में ही इसे हिन्दी में अनूदित कर डाला। जब इसे प्रकाशित करने का विचार आया तो मैंने गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली के संचालक स्व0 विजयकुमार जी से इसे छापने का अनुरोध किया। उन्होंने मेरे इस प्रस्ताव को स्वीकार भी किया किन्तु वे अपने जीवन काल में यह कार्य नहीं कर सके। उनके सुपुत्र अनिल ने 1993 में इसे प्रकाशित किया और मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार की उपमन्त्री कु0 शैलजा ने 6 दिसम्बर 1993 को इस उपन्यास का लोकार्पण किया।

'सूरज बुझाने का पाप' काक लोकार्पण समारोह हिन्दी के प्रख्यात लेखक कमलेश्वर की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ था और इसमें दिल्ली के अनेक लेखक तथा साहित्यकार उपस्थित थे। इसी समारोह में मेरी भेंट एक गुजराती संन्यासी स्वामी सच्चिदानन्द जी से हुई जिनकी कुछ कृतियों को मैं पढ़ चुका था। चतुर्थाश्रमी होने पर भी स्वामी जी के विचारों में मुझे सर्वत्र प्रगतिशीलता तथा तार्किक चिन्तन की प्रवृत्ति लक्षित हुई। उनके विचार अत्यन्त क्रान्तिकारी तथा समसामयिक प्रश्नों के सन्दर्भ में प्रासंगिक है। उनकी एक पुस्तक 'गीता अने आपना प्रश्नो' का हिन्दी में अनुवाद करने की बात जब उन्होंने कही तो मैंने उनके इस सुझाव को स्वीकार किया और एक निश्चित अवधि में इस कार्य को पूरा

कर डाला। यह अनुवाद स्वामी जी स्वयं ही छपायेंगे।

अंग्रेजी में आर्यसमाज पर एक महत्वपूर्ण विवेचन प्रधान ग्रन्थ लाला लाजपतराय ने लिखा जो आज से 80 वर्ष पूर्व लंदन से प्रकाशित हुआ था। आर्यसमाज अजमेर के प्रधान श्री दत्तात्रेय बाब्ले इसका हिन्दी अनुवाद करवाना चाहते थे। मैंने यह कार्य अपने अजमेर निवास के समय कर डाला और 1982 में आर्यसमाज अजमेर की स्थापना शताब्दी के अवसर पर यह प्रकाशित भी हो गया। इसका दूसरा संस्करण गत वर्ष सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने प्रकाशित किया। इस प्रकार आर्यसमाज पर लिखा गया यह कालजयी ग्रन्थ हिन्दी के पाठकों को सुलभ हो गया। लाला जी की प्रथम कृति 1891 में प्रकाशित हुई थी। उन्होंने अपने सहपाठी और मित्र, आर्यसमाज के मनीषी विचारक, लेखक तथा नेता पं0 गुरुदत्त विद्यार्थी की असामयिक मृत्यु के एक वर्ष के भीतर ही उनका एक जीवन चरित अंग्रेजी में लिखकर प्रकाशित किया था। इसका दूसरा संस्करण कभी नहीं छप सका और यह पुस्तक दुर्लभ ग्रन्थों की श्रेणी में आ गई। इसकी एक प्रति पंजाब विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में थी। जब 1991 में मैंने आर्यसमाज के समक्ष पं0 गुरुदत्त विद्यार्थी की निर्वाण-शताब्दी मनाने का सुझाव रखा तो मेरे मन में विचार आया कि इस वर्ष पं0 गुरुदत्त के इस प्रथम जीवन चरित को भी अनूदित कर देना चाहिए जो स्वयं उनके ही सहपाठी और घनिष्ठ मित्र लाला लाजपतराय की लेखनी से लिखा गया है। इसका प्रकाशन आर्य प्रकाशन दिल्ली ने उसी वर्ष में कर दिया।

लाला लाजपतराय के ही समसामयकि और उन्हीं की भांति आर्यसमाज को प्रखर मार्गदर्शन देने वाले स्वामी श्रद्धानन्द के दो अंग्रेजी ग्रन्थों का अनुवाद करने का अवसर मुझे 1987 में मिला जब आर्यसमाज के विख्यात पुस्तक प्रकाशक गोविन्दराम हासानन्द के स्वामी स्व0 विजयकुमार ने समग्र श्रद्धानन्द वाङ्मय का 11 खण्डों में सम्पादन करने का प्रस्ताव मेरे समक्ष रखा। स्वामी श्रद्धानन्द ने हिन्दी और उर्दू के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी साहित्य प्रणयन किया है। उन्होंने आचार्य रामदेव के सहलेखन में 'दि आर्यसमाज एण्ड इट्स डिट्रेक्टर्स-ए विण्डिकेशन' नामक ग्रन्थ 1910 में लिखा था। यह ग्रन्थ पटियाला रियासत द्वारा आर्यसमाज को षड्यन्त्रकारी और राज्य विरोधी (Sedicious and Anti British) घोषित करने तथा पटियाला के आर्यसमाज के अधिकारियों के पर-राजद्रोह का मुकदमा चलाने की पृष्ठभूमि में लिखा गया था। इसमें आलोच्य अभियोग की कार्यवाही का विवरण तो था ही, विस्तृत भूमिका में आचार्य रामदेव ने आर्यसमाज और उसके संस्थापक के राष्ट्रिय्र्य विचारों की सांगोपांग समीक्षा की है। यह ग्रन्थ लगभग 600 पृष्ठों में छपा है। जब इसके अनुवाद का कार्य मैंने अपने हाथ में लिया तो यही उचित समझा कि सम्पूर्ण ग्रन्थ का शब्दशः अनुवाद करने की अपेक्षा इसके मुख्य-मुख्य अंशों को ही अनूदित किया जाये। लेखक की भाषा अत्यन्त कठिन तथा शैली दुरूह है। आश्चर्य तो यह है कि लेखकों में से एक लाला मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) की शिक्षा क्वींस कालेज बनारस में मात्र इण्टरमीजियेट तक ही हुई थी और उनके सहयोगी लेखक आचार्य रामदेव मात्र बी0 ए0

ही थे। विचारने की बात यह है कि उस जमाने में अंग्रेजी का स्तर कितना ऊँचा थाा इसका पता इस पुस्तक को पढ़ कर लगाया जा सकता है। इस पुस्तक का अनुवाद करने में मुझे जो परिश्रम करना पड़ा वह कहने की चीज नहीं है। सन्तोष की बात तो यही है कि आर्यसमाज के इतिहास का एक स्मरणीय पृष्ठ इस अनुवाद के माध्यम से पाठकों को सुलभ हो सका।

स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने राजनैतिक जीवन के अनुभवों को 'दि लिबरेटर' नामक पत्र में धारावाही लेखमाला के रूप में प्रकाशित किया था। उन्होंने कांग्रेस में तब प्रवेश किया था जब यह संस्था अपने राष्ट्रीय स्वरूप में आई भी नहीं थी और इसके अधिवेशन तो भारत के कतिपय बुद्धिजीवियों की अंग्रेजी वक्तृताओं के लिए केवल मंच उपलब्ध कराते थे। महात्मा गांधी के नेतृत्व में ही कांग्रेस भारत की कोटि कोटि जनता की धड़कन बनी और स्वराज्य संग्राम के संचालन का सामर्थ्य प्राप्त किया। स्वामी जी का कांग्रेस से मोह भंग तब हुआ जब उन्होंने इस संस्था की मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति का नंगानाच देखा और वे इससे अपना सम्बन्ध तोड़ बैठे। इस प्रकार लगभग चौथाई शती की अवधि में फैले अपने कांग्रेस विषयक अनुभवों और संस्मरणों को स्वामी जी ने 'इन साइड कांग्रेस' नामक उपर्युक्त लेखमाला में पिरोया था। पुस्तक रूप में इनका प्रकाशन भी हुआ और दयानन्द संस्थान ने इसका द्वितीय संस्करण निकाला। श्रद्धानन्द ग्रन्थावली में मैंने इनसाइड कांग्रेस का हिन्दी अनुवाद (खण्ड 5) में प्रस्तुत किया। इस पुस्तक की भाषा अधिक सरल तथा समसामयिक राजनीति से जुड़ी होने के कारण पत्रकारिता की शैली की है। इसे हिन्दी का रूप देने में मुझे कठिनाई नहीं हुई। स्वामी सच्चिदानन्द एक प्रगतिशील विचारों के संन्यासी हैं। उनकी पुस्तक 'गीता तथा हमारे प्रश्न' का अनुवाद अभी प्रकाशक के पास सुरक्षित है। आशा है गीता पर यह विचारोत्तेजक ग्रन्थ शीघ्र ही हिन्दी पाठकों के लिए सुलभ होगा। ❁

विषय विष वासना की वास जो बसेगी तो,
भरपूर रोग भरा होगा तेरे तन में।
भव्य भावना के भाव भरोगे न प्यारे मित्र,
मलिन मलीनता का मैल होगा मन में।
काल कूट विष के समान सब ठौर होगा,
सुकृत के भाव न भरोगे निज धन में।
प्रभुता के लालच में प्रभु को भुलाओगे तो,
जीवन जलेगा पाप ताप की तपन में।

गतांक से आगे–

गोमेध का सच्चा अर्थ

लेखकः पं० दामोदर सातवलेकर

गोमेध–विषयक द्वितीय सूक्त
(अथर्ववेद के दशम काण्ड का दसवां सूक्त)

तिस्रो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीद्यत्यासनि।
तासां मध्ये या राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा।। 28।।

वरुण के मुख में तीन दीप्त जिह्वाएँ हैं। उन तीनों के बीच में जो प्रकाशित होती है, वह वशा गौ ही है। इसलिये इस गौ का दान लेना कठिन है।

चतुर्धा रेतो अभवक्शाया।
आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशवस्तुरीयम्।। 29।।

वशा गौ का वीर्य चार प्रकार से फैला है। एक भाग जल रूप से, दूसरा भाग दूध रूप से, तीसरा यज्ञरूप से और चौथा पशुरूप से।

वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः।
वशाया दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये।। 30।।

यह वशा गौ द्युलोक, पृथ्वी, विष्णु और प्रजापति परमात्मारूप है। साध्यदेव और वसु नामक देव भी वशा गौ का दूध पीते हैं।

वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये।
ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते।। 31।।

साध्य और वसु यहाँ गौ का ही दूध पीते हैं, अतः स्वर्ग में भी उन्हें गौ का दूध मिलता है।

सोममेनामेके दुहे घृतमेक उपासते।
य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गातास्त्रिदिवं दिवः।। 32।।

कुछ लोग सोम के लिये इस गौ को दुहते हैं तथा कुछ घी के लिये इसके पास जाते हैं। जो लोग उत्तम विद्वान् ब्राह्मण को गौ का दान करते हैं, वे स्वर्ग को जाते हैं।

ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्वा सर्वाँ ल्लोकान्त्समश्नुते।
ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्माथो तपः।। 33।।

जो लोग ब्राह्मणों को गौ का दान करते हैं, वे सब लोकों को प्राप्त करते हैं। क्योंकि इस वशा गौ में ऋत, ब्रह्म और तप रहते हैं।

वशां देवा उप जीवन्ति वशां मनुष्या उत।
वशेदं सर्वमभवद् यावत्सूर्यो विपश्यति।। 34।।

वशा गौ से देवता जीवन धारण करते हैं और मनुष्य भी इसी से जीवित हैं। गौ ही यह सम्पूर्ण जगत् बनी है। जहाँ तक सूर्य का प्रकाश पहुंचता है, वहाँ तक सब कुछ मानो गौ ही है।

अब विचार करके देखिये कि इन 34 ऋचाओं में गौ-हिंसा अथवा गो-मांस के हवन का उल्लेख कहाँ है? प्रत्युत गो-प्रदान स्पष्ट उल्लेख ऋ0 2, 27, 28, 32, 33 अर्थात् सूक्त में यत्र-तत्र-सर्वत्र है। गो-दान के अतिरिक्त गोदुग्ध का निर्देश ऋ0 4, 5, 6, 7, 8, 10, 11, 29, 30, 31 तथा 32 में है। ऋ0 10, 11, 29, 30, 31, 32 में गो-दुग्ध पान का महत्व वर्णन किया गया है। ऋ0 10, 11 में, वृत्रासुर-युद्ध के समय क्रुद्ध हुए इन्द्र ने वशा गौ का दूध लिया था, ऐसा वर्णन है। अत: यह सिद्ध होता है कि जब कोई तेजपूर्ण वीरता का कार्य करना हो; परिश्रम के कारण थकावट आ गयी हो अथवा क्रोध आ गया हो तो उस समय गौ का धारोष्ण दूध पीने से मन तथा शरीर प्रकृतिस्थ और शान्त होते हैं। ऋ0 29, 30, 31, 32 के अनुसार द्युलोक पृथ्वी, विष्णु एवं प्रजापतिरूपी वशा गौ का दूध वसु-साध्यादि देव यहाँ पीते हैं और स्वर्ग में भी उन्हें गो-दुग्ध मिलता है- इस वर्णन से गो-दुग्धपान की अत्यन्त श्रेष्ठता सिद्ध होती है। ऋ0 32 में घी का उल्लेख है। ऋ0 6 में गो-संगोपन एवं गाय का अमृतरूपी दूध बढ़ाने की रीति बतलायी गयी है, जो आज के विद्वानों को भी मान्य है।

दूध बढ़ाने तथा गौ को पुष्ट रखने के लिये खली, बोनमील (हड्डियों का चूरा) तथा बहुत-से अन्य कृत्रिम पदार्थ आजकल खिलाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप गाय के गोबर में दुर्गन्ध आ जाती है और दूध भी बिगड़ता है। इसीलिये हमारे यहाँ कहा है कि जो गाय 'अग्रमग्रं चरन्तीनामोषधीनां वने वने' वन-वन में ओषधिमय नयी-नयी घास बराबर चरती रहती हैं, उसका गोबर भी 'पवित्रं कायशोधनम्' काया को पवित्र करनेवाला एवं रोग-शोक का नाशक होता है। जिसके गोबर में यह शक्ति होती है, उसका दूध कितना आरोग्य और पुष्टिदायक होगा। छठी ऋचा में गाय को 'पर्जन्यपत्री' अर्थात् पर्जन्य से पालित होनेवाली कहा है। पर्जन्य से घास उत्पन्न होती है और झरनों में जल बहता है। वही निर्मल जल और घास गौ को मिलना चाहिये। 'पर्जन्यपत्री' पद का यही आशय है। किन्तु मेघों का जल सभी स्थानों पर गिरता है और किसी भी स्थान पर घास उग सकती है तथा जल प्राप्त हो सकता है। जो भी घास-पानी समय पर मिल जाय, उसे बिना विचार किये गौ को नहीं देना चाहिये। मलिन स्थान की घास तथा गंदे स्थान का जल गौ के स्वास्थ्य के लिये हानिकर होते हैं। इसीलिये मन्त्र में वशा गौ को 'यज्ञपदी' का विशेषण दिया है, जिसका तात्पर्य यह है कि यज्ञ के समान पवित्र भूमि में, जहाँ उत्तम घास और निर्मल जल मिल सके, गौ को घूमना चाहिये। यदि अशुद्ध स्थान की घास गौ खायेगी तथा अशुद्ध

जल पियेगी तो उसका दूध तथा अन्य गव्य पदार्थ रोगकारक बनेंगे, जिनके सेवन से मनुष्यों के रोग मिटने के स्थान पर बढ़ेंगे। गाय का पालन कितनी पवित्रता के साथ करना चाहिये इसका सूक्ष्म विचार 'पर्जन्यपत्री' तथा 'यज्ञपदी' इन दो शब्दों में पाठक देख सकते हैं। इनसे एक महत्वपूर्ण बात और भी सूचित होती है-वह यह कि गौ का दूध बढ़ाने के लिये कृत्रिम उपायों से काम न लेकर उसे जंगल में निर्मल तथा हरी-हरी घास खाते हुए विचरण करने दिया जाय तथा पीने के लिये शुद्ध जल दिया जाय तो उसका अमृततुल्य दूध स्वयं ही बढ़ जायगा।

यदि कोई यह शंका करे कि गोचरभूमि यज्ञभूमि के समान ही पवित्र होनी चाहिये-श्रुति की यह आज्ञा ठीक तो है, किन्तु चरते समय गौएँ एक ही दिन में अपने गोबर मूत्र से उस पवित्र भूमि को अपवित्र कर देंगी तो नित्यप्रति नयी पवित्र गोचरभूमि कहाँ से आयेगी, तो उन्हें छठी ऋचा के 'महीलुका' शब्द पर ध्यान देना चाहिये, जिसका अर्थ है-भूमि के तेज को बढ़ाने तथा उसको पवित्र करनेवाली। आगे 19वीं ऋचा में भी कहा गया है कि गौ तो ब्रह्म की उच्च शक्ति के एक बिन्दु से उत्पन्न हुई है, अतः अत्यन्त पवित्र है। वह जिस प्रदेश में घूमेगी, उस प्रदेश की पवित्रता उसके स्पर्श से घटने के बदले बढ़ जायगी। अन्य जीवों के समान गौ का मल-मूत्र अपवित्र नहीं होता, अपितु रोगहर, कृमिनाशक तथा भूमि को तेजस्वी और उर्बरा बनाने वाला होता है।

छठी ऋचा में 'इराक्षीरा' पद मांस पक्ष का खण्डन करने में बड़े महत्व का है। 'इराक्षीरा' का अर्थ है दुग्धरूपी अन्न देनेवाली। जो यह मानते हैं कि वैदिक ऋषि गोमांसभक्षक थे, उन्हें इस शब्द का यथार्थ मनन करना चाहिये। यदि हमारे वैदिक पूर्वज गोमांसभोजी होते अथवा वेदों को गोमांसभोजन अभीष्ट होता तो चारों वेदों की संहिताओं में गौ के लिये इरामांसा अर्थात् मांसरूप अन्न देनेवाली अथवा तदर्थक कोई अन्य शब्द अवश्य आता; किन्तु ऐसा एक भी शब्द नहीं आया, जिससे यह सिद्ध हो सके कि वैदिक आर्य गोमांसभोजी थे।

'इराक्षीरा' वशा से प्राप्त होने वाले पांच गव्य पदार्थ-दूध, दही, घृत, गोमय तथा गोमूत्र मनुष्य का अस्थिगत पाप अर्थात् रोग नष्ट करके उसकी प्राणशक्ति एवं धारणाशक्ति बढ़ाते हैं। यह बात 'स्वधा-प्राणा' से दर्शित होती है, जिसका अर्थ है-प्राणियों के भीतर रहनेवाली धारणा-शक्ति से युक्त प्राणवाली। मनुष्य-देह के रोग-कीटाणुओं को नष्ट करने के लिये गोमय तथा गोमूत्र अत्यन्त उपयुक्त हैं और इस प्रकार रोगहीन किन्तु दुर्बल शरीर की स्वधाशक्ति और प्राणशक्ति बढ़ाने का कार्य गोदुग्ध और गोघृत करते हैं। 'सद्यःशुक्रकरं पयः' तथा 'आयुर्वै घृतम्' आयुर्वेद के ये वचन सुप्रसिद्ध हैं, जिनका अर्थ है-दूध तत्काल वीर्य बनानेवाला होता है और घी ही आयु है। छान्दोग्योपनिषद् में तो घृत को अस्थि, मजा तथा वाक् उत्पन्न करनेवाला तेज कहा है (6। 5। 3)। घी दूध से प्राप्त होता है, यह सबको विदित है। अतः यह मानना पड़ेगा कि गो-दुग्ध में मनुष्य की प्राणशक्ति एवं धारणाशक्ति वास है, ऐसा समझकर गौ का पालन-पोषण एवं उसकी रक्षा भलीभांति करनी चाहिये।

अब छठी ऋचा का चतुर्थ पाद 'देवान् अप्येति ब्रह्मणा' पर विचार करना है, जिसका अर्थ है-जो ब्रह्म के साथ अर्थात् मन्त्र द्वारा उपासना, पूजा या सत्कार के साथ देवों को प्राप्त होती है। किन्तु मांस-पक्षवाले विद्वान् कहते हैं कि वेदमन्त्रों का उच्चारण करके गोमांस की आहुतियाँ देने का भाव इस पद से सिद्ध होता है। ऐसा अर्थ मानने पर जो पूर्वापरविरोध उत्पन्न होता है, उसकी ओर ये विद्वान् ध्यान नहीं देते। इस दशम सूक्त के प्रथम मन्त्रा में ही गौ को 'अघ्न्या' अर्थात् अवध्य नाम से सम्बोधित किया है। समस्सत 34 ऋचाओं में गो-वध अथवा मांस-हवन का उल्लेख एक भी स्थान पर नहीं आया; हाँ, गोप्रदान की महिमा, गोदुग्धपान की महिमा एवं गोदान लेने के अधिकारी आदि विषयों का वर्णन आया है। इससे मांस के हवन की कल्पना कैसे हो सकती है? इस सूक्त में अनेक बार आया हुआ 'वशा' शब्द मांस-पक्षवालों का एक बड़ा आधार है। वे कहते हैं कि 'वशा' का अर्थ 'वन्ध्या गौ' है; अतः मन्त्रों में जहाँ-जहाँ 'वशा' शब्द आया है, वहाँ-वहाँ वन्ध्या-गौ का वध करके उसके मांस-से हवन करने का भाव समझना चाहिये। किन्तु यह उनकी भूल है-इसके प्रमाणरूप में आगे की 23वीं ऋचा देखनी चाहिये, जिसमें 'ससूव हि तामाहुर्वशेति' अर्थात् (ससूव) जो सन्तान उत्पन्न करने योग्य होती है (ताम्) उसको (आहुः वशा इति) वशा कहते हैं। यही 'वशा' शब्द की व्याख्या है। यहाँ बाँझ गौ या उसके मांस की आहुतियों का सम्बन्ध कहाँ से आया?

23, 24, 25-इन तीन ऋचाओं पर थोड़ा सूक्ष्म विचार किया जाय तो विदित होगा कि गौ की उत्तम सन्तान पैदा करना भी 'गोमेध' का एक भाग है। जो 'असूसु' अर्थात् न व्यानेवाला है, वह इस वशा का भाई अथवा सम्बन्धी अर्थात् बैल है। वह इतना परिपुष्ट तथा बलवीर्य सम्पन्न होता है कि उससे उत्पन्न होने वाले गर्भ को देखकर सब काँपने लगते हैं। वह अकेला ही युद्ध करता है और अकेला ही इस गौ को वश में रखता है। ऐसे सुयोग्य बैल का वशा गौ से सम्मेलन कराना एक प्रकार का यज्ञ ही है। इस यज्ञ से उत्तम गो-वंश उत्पन्न हो सकता है; साथ ही घी, दूध आदि पदार्थों की भी प्रचुरता होती है। जब पहले-पहल ये यज्ञ आरम्भ हुए, तब (तरांसि अभवन्) बड़े वेग से फैले, क्योंकि इन यज्ञों से जनता का प्रत्यक्ष लाभ होता था। धीरे-धीरे आगे चलकर (तरसां चक्षुः वशा अभवत्) वेग से फैलने वाले इन यज्ञों की आंख वशा ही बन गयी अर्थात् इन यज्ञों का एकमात्र उद्देश्य उत्तम-से-उत्तम गौ उत्पन्न करना हो गया।

सप्त प्रवाह, सात प्रकार के अन्तर-यज्ञ का सिर, वरुण की जिह्वा, वशा गौ की राष्ट्र-रक्षण-क्षमता आदि रहस्यमय अनेक महत्वपूर्ण विषय इस सूक्त में है। किन्तु इन सब विषयों का विवेचन इस लेख की सीमा के बाहर होगा, इस लेख का तो एकमात्र उद्देश्य यह निर्णय करना है कि गोमेध-यज्ञ में गोहिंसा अथवा गोमांस का हवन होता था या नहीं। इन दोनों सूक्तों को अर्थसहित ऊपर देकर यह समझाया जा चुका है कि इनमें गोदान, गोदान लेने का अधिकारी, गौ का राष्ट्रीय महत्व, गोदुग्ध-सेवन की अत्यधिक उपयोगिता, गोपालन तथा गोदान का फल आदि विषयों का वर्णन है। अतः 'पचति 'पक्तारः' 'शमितारः' आदि शंकास्पद तथा अनेकार्षक शब्दों का अर्थ प्रकरण के अनुकूल ही लगाना चाहिये।

-(शेष अगले अंक में)

स्वदेश भक्ति

घर की तो ममता न हुई,
प्रिय जन का न कुछ छोह हुआ।
सुख-सम्मान विपुल वैभव का,
मन में न मुझे कुछ मोह हुआ।
जीवन की वृथा चहल-पहल है,
कभी न मैंने पहचाना।
ऋषिवर के मात्र इशारे पर,
मर मिटना ही मैंने जाना।
इतिहासों में अमर बनूँ,
है ऐसी शक्ति कहाँ मेरी।
विश्व छोड़ जब चला,
भुलाते लगती फिर किसको देरी?
जग भूले पर मुझे एक बस,
सेवा धर्म निभाना है।
जिसकी है यह देह उसी में,
इसे मिल मिट जाना है।

❀❀❀

हम दीन दरिद्र हुताशन में, दिन रात पड़े दहते रहते हैं।
चित मेल विरोध महानद में, मन बोहित से बहते रहते हैं।
कवि शंकर! काल-कुशासन की, फटकार कड़ी सहते रहते हैं।
पर भारत के गत गौरव की, अनुभूत कथा कहते रहते हैं।

उपनिषद् क्या हैं ?

लेखक: डॉ0 सत्यदेवसिंह, अशोकासिटी, मथुरा (उ.प्र.)

प्रत्येक सामान्य जन के मन–मस्तिष्क में यह प्रश्न प्रायः उठा करता है कि 'उपनिषद्' क्या हैं? जिसका उत्तर देते हुए विज्ञजन बताते हैं कि 'वेदों का सारगर्भित अर्थ और मनीषियों/ऋषियों के अनुभूत ज्ञान का सार उपनिषद् हैं। संस्कृत भाषा के 'उपनिषद्' शब्द की व्युत्पत्ति उप+नि उपसर्ग पूर्वक 'षद्' धातु के मेल से बताई गई है। यहाँ उप = 'समीप' अर्थ में है और 'नि'+'षद्' का अर्थ है–बैठना। अतः जब गुरु व शिष्य समीप (पास–पास) बैठकर परस्पर अध्यात्मज्ञान की चर्चा करते हैं, उस शास्त्र का नाम 'उपनिषद्' है।

उपनिषद् के ऋषियों का लक्ष्य किन्हीं दार्शनिक रहस्यों पर ऊहापोह न करके अपने हृदय की अनुभूति को प्रकट करना है। सरल शब्दों में कहें तो उपनिषदें मनुष्य को अपने अन्दर झाँकने की या अध्यात्म ज्ञान की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा देती हैं। विद्वानों ने उपनिषदों की संख्या दो सौ से भी अधिक बताई है, किन्तु मुख्यरूप से ग्यारह उपनिषदें ही प्रसिद्ध हैं, वे ग्यारह उपनिषद् इस प्रकार हैं–

(1) ईश, (2) केन, (3) कठ, (4) प्रश्न, (5) मुण्डक, (6) माण्डूक्य, (7) ऐतरेय, (8) तैत्तिरीय, (9) छान्दोग्य, (10) बृहदारण्यक और (11) श्वेताश्वतर।

जगतगुरु आदि शंकराचार्य जी ने प्रथम 10 उपनिषदों के ऊपर ही अपने भाष्य दिये हैं।

कुछेक विद्वान् वर्तमान में उपलब्ध उपनिषदों की संख्या 108 बताते हैं, जिनमें ऋग्वेद से 10, यजुर्वेद से 51, सामवेद से 16 एवं अथर्ववेद से 31 उपनिषद् बताये गये हैं। इनका विभाजन इस प्रकार किया गया है–

1. <u>ऋग्वेद के 10 उपनिषद्:–</u> 1. ऐतरेय, 2. कौषीतकि, 3. नाद–बिन्दु, 4. आत्मबोध, 5. निर्वाण, 6. मुद्गल, 7. अक्षमालिक, 8. त्रिपुर, 9. सौभाग्य व 10. बह्वृच।

2. <u>यजुर्वेद के 51 उपनिषद्:–</u> 1. ईश, 2. कठ, 3. तैत्तिरीय, 4. बृहदारण्यक, 5. ब्रह्म, 6. कैवल्य, 7. जाबाल, 8. श्वेताश्वतर, 9. हंस, 10, गर्भ, 11. नारायण, 12. परमहंस, 13. अमृत–बिन्दु, 14. अमृत–नाद, 15. कालाग्निरुद्र, 16. सुबाल, 17. क्षुरिक, 18. मान्त्रिक, 19. सर्वसार, 20. निरालम्ब, 21. शुक–रहस्य, 22. तेजो–बिन्दु, 23. ध्यान–बिन्दु, 24. ब्रह्मविद्या, 25. योगतत्व, 26. त्रिषिरव, 27. मण्डल ब्राह्मण, 28. दक्षिणामूर्ति, 29. स्कन्द, 30. अद्वयतारक, 31. पैंगल, 32. भिक्षुक, 33. शारीरक, 34. योगशिखा, 35. तुरीयातीत, 36. एकाक्षर, 37. अक्षि, 38. अध्यात्मा, 39. अवधूत, 40. कठरुद्र, 41. रुद्र–हृदय, 42. योग–कुण्डिलिन, 43. तार सार, 44. पंच–ब्रह्म, 45. प्राणाग्निहोत्र, 46. याज्ञवल्क्य, 47.

वराह, 48. शात्यायिन, 49. कलि-सन्तारण, 50. सरस्वती-रहस्य और 51. मुक्तिक।

3. सामवेद के उपनिषद्:- सामवेद से 16 उपनिषद् हैं, जो इस प्रकार हैं- 1. केन, 2. छान्दोग्य, 3. आरुणेय, 4. मैत्रायिण, 5. मैत्रेयि, 6. वज्र-सूच, 7. योग-चूड़ामणि, 8. वासुदेव, 9. महत, 10. संन्यास, 11. अव्यक्त, 12. कुण्डिक, 13. सावित्री, 14. रुद्राक्ष, 15. दर्शन, 16. जाबाल।

4. अथर्ववेद के उपनिषद्:- इनकी संख्या 31 बताई जाती है, जो इस प्रकार हैं-1. प्रश्न, 2. मुण्डक, 3. माण्डूक्य, 4. अथर्व-शिर, 5. अथर्व-शिरव, 6. बृहज्जाल, 7. नृसिंहतापनी, 8. परिव्रात् (नारद परिव्राजक), 9. सीता, 10. शरभ, 11. महानारायण, 12. राम रहस्य, 13. रामतापिणि, 14. शाण्डिल्य, 15. परमहंस-परिव्राजक, 16. अन्नपूर्ण, 17. सूर्य, 18. आत्मा, 19. पाशुपत, 20. परब्रह्म, 21. त्रिपुरातपिन, 22. देवि, 23. भावन, 24. भस्म, 25. गणपिति, 26. महावाक्य, 27. गोपाल-तपिण, 28. कृष्ण, 29. हयग्रीव, 30. दत्तात्रेय, 31. गारुड़।

भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियों ने जिस सत्य का दर्शन किया था, उसका नाम उन्होंने 'ब्रह्म' रखा था और जगत् का ध्यान ब्रह्म (ईश्वर) की ओर खींचने के लिए ऋषियों ने जिस विद्या को जन्म दिया था, उसका नाम उन्होंने **'ब्रह्म-विद्या'** रखा था और 'ब्रह्मविद्या' का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थों का नाम ही 'उपनिषद्' रखा गया। अतः उपनिषदों को समझने के लिए उपनिषदों के ऋषियों के दृष्टिकोण को समझना परमावश्यक है। ऋषियों का कहना था कि सृष्टि 'सत्' है, परन्तु इससे भी ज्यादा कोई दूसरी वस्तु सत् है, उस सत् की सत्ता से ही इस सृष्टि का रूप सत् दिखाई देता है, वस्तुतः **'सत्'** यह नहीं, वह है और वही **'ब्रह्म'** है, वही **'आत्मा'** है- उसी को जानकर-अनुभव कर मनुष्य अमृत होता है, अमर होता है। उपनिषद् के ऋषियों का कहना है कि जो साधक/योगी इस दृष्टि को प्राप्त कर लेता है, वह जैसे हम अपनी स्थूल आंखों से इस सृष्टि/जगत् को देखते हैं, वैसे ही योगी/साधक अपनी आंखों से ब्रह्म (ईश्वर) को देखने लगता है, उसका अज्ञान का पर्दा दूर हो जाता है और ज्ञान-रश्मियाँ ज्योतित होने लगती हैं और यहीं पर उसे ब्रह्म-दर्शन होने लगते हैं।

उपनिषद् के ऋषि याज्ञवल्क्य ने बार-बार यही कहा है कि यह संसार है, किन्तु यह अन्त तक रहने वाला नहीं है। इस संसार का यही अन्तिम सार है- यह है अतः यथार्थवादी दृष्टिकोण को लेकर ही स्थान-स्थान पर उपनिषद् में कहा है-'यह सत् नहीं, 'वह' सत् है। शरीर इन्द्रियादि सत् नहीं, आत्मा सत् है। उपनिषद् का यह दृष्टिकोण काल्पनिक नहीं, यथार्थ दृष्टिकोण है। यह ऐसा दृष्टिकोण है, जिसके सामने भौतिकवादी एवं अध्यात्मवादी दोनों विचारकों को एक स्वर में बोलना पड़ता है।

उपनिषद् के रहस्य को समझने के लिए ऋषियों के तत्त्व दर्शन को समझना परमावश्यक होगा। ऋषियों का कहना था कि ब्रह्म को ढूँढ़ने के लिए कहीं दूर भटकने की जरूरत नहीं है, जो कुछ **ब्रह्माण्ड** में है, वही-कुछ **पिण्ड** में है। वर्तमान समय में विज्ञान (Science) भी यही मानता है कि जो नियम परमाणु (Atom) में काम कर रहे हैं, ठीक वही नियम सौर-मण्डल में काम कर रहे हैं। इसी बात को उपनिषद् के

ऋषि और आगे ले गये हैं। उनका कहना है कि जो नियम भौतिक जगत् में क्रियाशील हैं, वही नियम आध्यात्मिक जगत् में भी कार्य कर रहे हैं। इस तथ्य को प्रकट करने के लिए उपनिषद् में **'अथाधिदैवतम्'** तथा **'अथाध्यात्मम्'** इन दो शब्दों का प्रयोग किया गया है। यहाँ 'अथाधिदैवतम्' का अभिप्राय है–देखो, वही नियम पिण्ड में कार्य कर रहे हैं। अधिदैवत व अध्यात्म, ब्रह्माण्ड व पिण्ड इन दोनों की एकरूपता को समझ लेना, जान लेना ही उपनिषद् के रहस्य को समझ लेना होगा।

वास्तव में, उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय बस इतना भर है कि मानव-मन में जो दुविधा या उलझन पैदा होती है, उस दुविधा या उलझन को दूर कर देना अथवा उसे सुलझा देना। प्रायः हम मनुष्य, ब्रह्माण्ड में प्रकृति में उलझे रहते हैं और पिण्ड में हम शरीर में उलझे रहते हैं। प्रकृति का जीवन 'ब्रह्म' से है और शरीर का जीवन 'आत्मा' से है। हमारी उलझन या दुविधा की वास्तविक वस्तु ब्रह्माण्ड में प्रकृति नहीं, 'ब्रह्म' है और पिण्ड में शरीर नहीं, 'आत्मा' है। जिस प्रकार भौतिकवादी वैज्ञानिक **प्रकृति तथा शरीर** को यथार्थ समझता है, उसी प्रकार उपनिषद् का ऋषि **ब्रह्म तथा आत्मा** को यथार्थ समझता है। भौतिकवादी का 'भौतिक यथार्थवाद' (Physical Realism) अनुभव के आधार पर खड़ा है और अध्यात्मवादी 'अध्यात्म-यथार्थवाद' (Spritnal Realism) भी ऋषियों के अनुभव के आधार पर खड़ा है।

वस्तुतः उपनिषद् का प्रतिपाद्य विषय **'एकत्व'** या **'द्वित्व'** नहीं, अपितु 'आत्म-तत्त्व' एवं 'ब्रह्म-तत्त्व' है। उपनिषद् के ऋषि का कथन है कि यह तर्क या मुक्ति से सिद्ध करने की जरूरत नहीं है कि संसार टिकने वाला नहीं है, सदा रहने वाला नहीं है, यह तो हम सभी का अनुभव है कि मनुष्य के शरीर में से जब प्राण निकलने लगता है, तब उसके आँख, नाक, कान आदि सब इन्द्रियाँ अपना-अपना काम करना बन्द करने लगती हैं, भागने लगती हैं, फिर हम इस विषय में क्यों उलझे रहें, उस 'आत्मतत्त्व' अथवा 'ब्रह्मतत्त्व' को प्राप्त करने का यत्न क्यों न करें? **जिसके कारण यह जीव-जगत् सब कुछ है और जिसके बिना यह सब-कुछ रहता हुआ भी नहीं रहता।** यह विचार उपनिषद् के प्रत्येक पृष्ठ पर पंक्ति-पंक्ति में अंकित है और यही उपनिषद् का प्रतिपाद्य विषय भी है। उपनिषदों के महत्व को स्वीकारते हुए जर्मन दार्शनिक **'शोपनहार'** (Schopenhauer) ने तो यहाँ तक माना है कि 'यदि जीवन में मुझे किसी चीज से आत्मिक-शान्ति मिली है तो वह उपनिषदों के अध्ययन से, उपनिषदों के ज्ञान से।' आगे वे कहते हैं कि अगर मृत्यु के समय मुझे किसी चीज से शान्ति मिल सकती है तो वह मात्र उपनिषदों से। ❁

जिसके ज्ञानागार में प्रतिभा करे विलास।
बीज विश्व विज्ञान का समझो उनके पास॥
सत्य संसार का सार है, सत्य का शुद्ध व्यापार है।
सत्य सद्धर्म का धाम है, सत्य सर्वज्ञ का नाम है॥

उपासना और महर्षि दयानन्द

लेखकः– स्वामी सत्यानन्द जी

परमहंस दयानन्द उपासना–कांड के पूरे पालन करने वाले थे। उनकी ध्यानावस्थित मूर्ति को देखकर भक्तजन प्रेम–भाव से गद्‌गद् हो जाया करते थे। उनको वन–स्थानों में, निर्जन प्रदेशों में एकान्त शांत कुटियों में, वृक्षों के मूल में, स्वच्छ सुन्दर शिलाओं पर, नदियों के तट और भागीरथों के विमल, शुद्ध बालू पर अचल समाधिस्थ देखकर प्रेमीजन श्रद्धामय हो जाते थे। श्री सहजानन्द ने महाराज को उदयपुर के उद्यान में जब पहले–पहले उपासना के परम पद पर पहुँचे हुए देखा, तब उनके हृदय–देश में श्रद्धा–भक्ति का स्रोत खुल गया। उसी समय से वे उनके अनन्य भक्त बन गये। सहजानन्द जी ने एक बार अपने गुरुदेव को चौबीस घण्टों की लम्बी समाधि में भी निमग्न, प्रशान्त, अकम्प और तुर्या अवस्था–प्राप्त देखा था। उनकी ध्यान धारणा के वर्णनों से उनका जीवन–चरित भरा पड़ा है।

उपासना के विषय में श्री महाराज के वचन ये हैं–"जो मनुष्य सच्चे प्रेम से, भक्ति–भाव से परमेश्वर की उपासना करेंगे, उन उपासकों को परम कृपामय, अन्तर्यामी परमेश्वर, मोक्ष–सुख–सम्पन्न कर सदा के लिये आनन्दी कर देगा।" इसमें सन्देह नहीं कि जो जन अपनी सब वस्तुएँ परमेश्वर के लिये समर्पित कर देता है, उसको परम कारुणिक परमात्मा सम्पूर्ण सुख प्रदान करता है। जो मनुष्य पूजने योग्य प्रभु का अपने हृदय–रूप आकाश में, भली भांति, प्रेम, भक्ति और सत्याचरण द्वारा पूजन करता है, वही उत्तम मनुष्य है।"

धारणा का वर्णन करते हुए कहा– "मन को निश्चल करके उसकी नाभि, हृदय, मस्तक और जीभ के अग्र भाग आदि देशों में स्थिर कर ओंकार का चिन्तन करना धारणा है।" धारणा का फल यह बताया है–परमेश्वर के स्वरूप में मन और आत्मा की धारणा होने से व्यावहारिक और परमार्थिक विवेक बराबर बढ़ता रहता है। ईश्वर में विशेष भक्ति होने से मन का समाधान होता है और तब मनुष्य समाधि–योग को शीघ्र प्राप्त कर लेता है।

महाराज का ध्यान सम्बन्धी उपदेश इस प्रकार है–"एकान्त स्थान में आसन लगाकर अपने मन को शुक्त और आत्मा को स्थिर करें। अपनी इन्द्रियों और मन को सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म में निमग्न कर सम्यक् प्रकार से चिन्तन करे। परमात्मा ही में निज आत्मा को जोड़े। उसी परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना बार–बार करके आत्मा को भली भांति लवलीन बनावे।" ऐसी विधि से उपासना–आराधना करे–जिससे उपासक के मन को एकाग्रता, प्रसन्नता और यथार्थ ज्ञान उपलब्ध हो। उसके हृदय में परमात्मा का प्रकाश, प्रेम और भक्ति आदि गुण बढ़ते चले जाएँ।"

प्राणायाम–पूर्वक उपासना करने से– आत्मा के ज्ञान को आवृत्त करने वाला अज्ञान नित्य प्रति नष्ट होने लगता है और आत्मज्ञान का प्रकाश धीरे–धीरे बढ़ता चला जाता है। अपने आत्मा में जो आनन्द–स्वरूप अन्तर्यामी परमेश्वर विद्यमान है, उसके स्वरूप में निमग्नता लाभ करनी चाहिए।'' विमल गम्भीर नीर में नहाने वाला जन जैसे बार–बार गहरी डुबकी लगाकर ऊपर आता और नीचे जाता है, वैसे ही परमेश्वर में अपनी आत्मा को बार–बार निमग्न करना अत्यन्त उचित है। ध्यान और आश्रय के योग्य, अन्तर्यामी, व्यापक परमेश्वर के प्रकाशमय, आनन्दमय स्वरूप में सुविमल विचार और परम प्रेम–भक्ति से उपासक को ऐसे प्रवेश करना चाहिए जैसे सागर में नदियाँ प्रवेश करती हैं। ध्यान–काल में, ध्याता को अपने ध्येय–परमात्मा के अतिरिक्त दूसरी किसी भी वस्तु का स्मरण चिन्तन करना उचित नहीं है।''

नाड़ियों में ध्यान– ''गंगा आदि नाम इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, कूर्म और जठराग्नि की नाड़ियों के हैं। इनमें ध्यान करने से–अभ्यास करने से उपासक के सारे दुःख दूर हो जाते हैं। उपासना–धारणा नाड़ियों द्वारा ही करनी पड़ती है। इड़ा पिंगला ये दोनों नाड़ियाँ जहाँ मिलती हैं, उस संगम–स्थान का नाम सुषुम्ना है। उस संगम में स्नान करने से–योगाभ्यास करने से–उपासक जन शुद्ध हो जाते हैं। तदनन्तर परम पवित्र रूप परमात्मा देव को पाकर सदा आनन्द में रहते हैं।''

संकेत रूप से अनाहद् नाद का निरूपण– मुख और जिह्वा के व्यापार के बिना ही, मन में विविध व्यवहारों का विचार और शब्दोच्चारण होता रहता है। कानों को उंगलियों से बन्द करके सुनो कि बिना मुख, जीभ, तालू आदि अंग हिलाये कैसे कैसे शब्द भीतर हो रहे हैं। परमात्मा के ध्यान में निमग्न रहने वाले उपासक की सिद्ध–अवस्था का ही स्वामी जी ने इस प्रकार वर्णन किया है–'जैसे प्रचण्ड अग्नि–कुण्ड में उत्तम किया लोहा भी लाल अग्नि रूप हो जाता है, वैसे ही जिस अवस्था में उपासक अपनी देहादि के अभ्यास को भूल जाता है और परमात्मा के ज्ञान से जगमगा उठता है और उसके प्रकाश से–स्वरूप से, आनन्द से, ज्ञान से–अपनी आत्मा को परिपूर्ण कर लेता है, उस शान्त अवस्था को समाधि कहते हैं।''

ध्यान और समाधि में क्या भेद है, इसको भगवान् दयानन्द ने यों दर्शाया है– 'ध्यान और समाधि में केवल इतना ही भेद है कि ध्यान में तो ध्याता–ध्यान करने वाला–ध्यान, अर्थात् जिस मन से ध्यान किया जाता है, और ध्येय अर्थात् जिस वस्तु का वह ध्यान करता है, ये तीनों बने रहते हैं। परन्तु समाधि में तो आत्मा केवल परमात्मा ही के आनन्द स्वरूप और ज्ञान में निमग्न हो जाता है। वहाँ ध्याता, ध्यान और ध्येय का भेद–भाव नहीं रहता।

उपासना और वैदिक गृहस्थ– प्रशसित श्री परमहंस जी ने घर–बारी लोगों को उपासना के जिस प्रकार का उपदेश किया है, वह सुगम सरल और आदरणीय है। वे कहते हैं–''स्त्री–पुरुषों को सदा

रात्रि के दस बजे सोना चाहिए। वे सबेरे चार बजे, ब्रह्म मुहुर्त में उठ बैंठें। सबसे पहले ईश्वर का चिन्तन करके फिर धर्म और अर्थ का चिन्तन करें। उस दिन जो कार्य करने हों, उनका समय-विभागादि बनावें। धर्म और अर्थ के कामों को करते हुए यदि कष्ट-क्लेश भी हों तो भी ऐसी धारणा करें कि उनका परित्याग कदापि न होने पावें। व्यावहारिक और पारमार्थिक कर्त्तव्य-कर्म की सिद्धि के लिए ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना भी किया करें। परमेश्वर की कृपादृष्टि और सहायता से महा कठिन कार्य भी बड़ी सुगमता से सिद्ध हो जाते हैं।'' इस प्रकार परमेश्वर की प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए। तत्पश्चात् शौच हो, दंतधावन कर, मुंह हाथ धो स्नान करना उचित है। एक वा डेढ़ कोस दूर एकान्त जंगल में जाकर योगाभ्यास की रीति से उपासना करें। घड़ी आधी घड़ी दिन चढ़े तक घर में आ जायें और सन्ध्योपासना में कम से कम तीन और अधिक से अ धिक इक्कीस प्राणायाम विधिपूर्वक करने चाहिए।'' जो मनुष्य धर्माचरण ईश्वर और उसके आदेश में अति प्रेम करते हैं और हृदय-रूप विमल वन में रात दिन रहते हैं, वे परमेश्वर के समीप वास करते हैं।''❁

तपोभूमि मासिक के पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका प्रतिमाह आप तक पहुँच रही है। हमारा हर सम्भव प्रयास यही रहता है कि पत्रिका में उच्चकोटि के विद्वानों के सारगर्भित लेख प्रकाशित करके आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सिद्धान्तों के अनुसार प्रचार करते हुये यह पत्रिका जन-जन तक पहुँचे। ताकि वे इसका पूर्णतया लाभ प्राप्त कर सकें। लेकिन यह तभी सम्भव है जब आप सबका सहयोग हमें मिले।

'तपोभूमि' मासिक के पाठको से निवेदन है कि जिन्होंने अपना वार्षिक शुल्क चालू वर्ष या पिछले वर्ष का शुल्क अभी तक नहीं भेजा है। वे शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करें। वार्षिक शुल्क 150/- एक सौ पचास रुपये तथा पन्द्रह वर्ष हेतु 1500/- एक हजार पाँच सौ रुपये भेजकर पत्रिका पढ़ने का लाभ उठायें।

हम आपको प्रति माह पत्रिका पहुँचाते रहेंगे। आपके सहयोग व हमारे परिश्रम से निरन्तरता बनी रहेगी और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी व आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार जन-जन तक भी होता रहेगा।

हमें अपने ग्राहक महानुभावों से यही अपेक्षा है कि बिना विघ्न कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। साथ ही यह भी प्रार्थना है कि आप अपने परिश्रम से नवीन ग्राहक बनवाने का सौभाग्य प्राप्त करें।

-धनराशि भेजने हेतु बैंक का नाम व पता एवं खाता संख्या-

इण्डियन ओवरसीज बैंक

शाखा युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, जयसिंहपुरा, मथुरा

I F S C Code- IOBA 0001441

'सत्य प्रकाशन' खाता संख्या- 144101000002341

दान हेतु- श्री विरजानन्द ट्रस्ट' खाता संख्या- 144101000000351

श्रद्धामूर्ति स्वामी श्रद्धानन्द !

(23 दिसम्बर जिनकी पुण्य बलिदान तिथि है)

लेखक: प्रकाशवती शास्त्री

प्राण देते धर्म पर, कर्तव्य निभाने के लिये।
आदर्श जीवन है वही, उपदेश पाने के लिये।।

मार्ग में चलते हुए एक दिन एक बहिन के दर्शन हुए। नमस्ते और कुशल प्रश्न के उपरान्त मैंने पूछा–क्यों बहिन! बहुत दिनों से सत्संग में नहीं आई? बोलीं–क्या करूँ बहिन घर में इतना काम रहता है कि सत्संग आने का अवकाश ही नहीं मिलता।

वह बहिन तो बात करके चली गई पर मेरे मन को एक धक्का सा लगा–"सत्संग में आने के लिए अवकाश नहीं" क्या यह भारत की नारी बोल रही थी? जो दिनों उपवास रखती है, घण्टों पूजा–पाठ कर सकती है। जहाँ के लोग हजारों रुपया खर्च करके सुदूर पर्वत की गह्वर गुफाओं में देवी–देवताओं के दर्शन करने पहुँच जाते हैं, शीत ऋतु में भी सरिताओं की शीतल–तरंगों में केवल धर्म की भावना से स्नान करते हैं, वहाँ आर्यसमाज के सत्संग में आने के लिये अवकाश नहीं, कितनी उपेक्षा? क्या आर्यसमाज अथवा आर्यसमाज का सत्संग श्रद्धा का पात्र नहीं? उसी समय मन ने एक ऊँची उड़ान लगाई।

श्रद्धा के अभाव का ध्यान आते ही मेरे स्मृति–पट पर श्रद्धा की साकार प्रतिमा स्वामी श्रद्धानन्द की दिव्य मूर्ति प्रकट हुई। कितनी श्रद्धा! कितना विश्वास!! कितनी लगन!!! स्मरण–मात्र से ही मन पुलकित हो उठा, हृदय गद्‌गद् हो गया। वह स्वामी श्रद्धानन्द जिनका जन्म का नाम मुंशीराम था, केवल श्रद्धा के तत्वों से लालित व पालित हुए थे। आज लोग कहते हैं, आर्यसमाज का विषय ही शुष्क है, वैदिक धर्म ज्ञान प्रधान है, नीरस है, इसमें जनता को आकर्षित करने की शक्ति नहीं। यह जन–जन में श्रद्धा की वृत्ति को उत्पन्न नहीं कर पाता। पर हम भूल जाते हैं, सूरज के प्रखर प्रकाश में भी हम वस्तु स्थिति को नहीं समझ पाते। यह वही वैदिक धर्म है जिसने महात्मा मुंशीराम को सत्य मार्ग दिखाकर उनके हृदय में अजस्र श्रद्धा की मन्दाकिनी को प्रवाहित किया था।

मुंशीराम का चंचल मन, ऋषि दयानन्द के उपदेशामृत का पान करके ही स्थिर हुआ था। घने अन्धकार में भटकने वाले उनके सत्य प्रेमी मन को सत्यार्थ प्रकाश ने ही सच्ची ज्योति प्रदान की थी।

महात्मा मुंशीराम शैशवकाल से ही सत्यमार्ग के पथिक थे। उनके घर का वातावरण प्राचीन रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से परिपूर्ण था, माता–पिता की प्रेरणा से उन्हें सभी रीतियों को निभाना पड़ता था। परन्तु उनके अन्तरतम में सदा एक प्रश्न जागृत रहता था? क्या यह सत्य है? नियम पालन

और तत्परता उनके जन्मजात गुण थे। इन्हीं गुणों ने इन्हें आगे चलकर स्वामी श्रद्धानन्द बनाया। उनका सत्यप्रेम ही उन्हें क्रमशः वैदिक धर्म के उज्ज्वल मार्ग पर ले गया। सत्य का ज्ञान होते ही उन्होंने मध्यकालीन परम्परागत मिथ्या रूढ़ियों को झटका मार कर तोड़ दिया और पुनः उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। आज वर्षों से हम आर्यसमाज के सदस्य, मन्त्री और प्रधान बनकर भी अनावश्यक प्रथाओं में बंधे रहते हैं। असत्य को असत्य जानकर भी उसका परित्याग नहीं कर पाते कितनी विडम्बना है।

स्वामी श्रद्धानन्द सच्चे अर्थों में ऋषि दयानन्द के शिष्य थे, वैदिक धर्म के अनुयायी थे। किसी भी सत्य को जानकर उसे तुरन्त कार्यरूप में परिवर्तित कर देना उनका सर्वश्रेष्ठ गुण था। उन्हें सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने को मिला तो जब तक उसे पूरा पढ़ नहीं लिया भोजन नहीं किया। जब उन्हें ज्ञान हुआ कि शराब और मांस हेय और त्याज्य हैं तो एकदम उनका बहिष्कार कर डाला। शराब के प्याले और पात्र उठाकर गली में फेंक दिये। पक्के शाकाहारी बन गये। वे असत्य का त्याग और सत्य का ग्रहण तुरन्त करते थे।

अपने जीवन को सुन्दर और सदाचारी बना कर ही उन्होंने सन्तोष नहीं किया, वह आगे बढ़े। उन्हें अपनी ही उन्नति में सन्तोष नहीं था, वे सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझते थे।

स्वामी श्रद्धानन्द के युग में लोगों ने देखा गंगा नदी के तट पर ऋषियों का युग आया है, तपोवन बन गया है। यज्ञ का धुआँ उठ रहा है, वेदों की ध्वनि गुंजरित हो रही है। सिंह, सर्प और व्याघ्र से भरे उस वन में आश्रमों का विस्तार हो रहा है। देश-विदेश के बालक वहाँ आकर गुरुजनों के साथ रहकर शिक्षा पा रहे हैं। श्रद्धानन्द की श्रद्धा की मन्दाकिनी गंगा की धारा से होड़ लेने लगी है। श्रद्धालु भक्तों की भीड़ खिंची चली आ रही है। अन्न, धन, वस्त्र किसी वस्तु की कमी नहीं। ऋषि ने अनेकानेक अजेय कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करके गुरुकुल का आदर्श भारतीय जनता के सन्मुख प्रस्तुत किया। और इस प्रकार अपनी उस प्राचीन भारतीय संस्कृति का वह गौरवमय रूप पुनर्जीवित किया।

स्वामी श्रद्धानन्द प्रगतिशील व्यक्ति थे। उनकी विकसित होती हुई आत्मा गुरुकुल में सीमित न रह सकी। उन्होंने विदेशी सरकार से पीड़ित भारत माता की करुण पुकार को सुना। उन्हें सत्यार्थ प्रकाश में लिखित ऋषि दयानन्द की उन पंक्तियों का ध्यान ही आया कि चाहे कोई कुछ भी करे अच्छे से अच्छा विदेशी राज्य भी अपने स्वदेशी राज्य से अच्छा नहीं होता। उन्होंने राजनीति में प्रवेश किया। यह दिल्ली नगरी वह ऐतिहासिक-वीर दिवस न भूली होगी जब चाँदनी चौक में खड़ी भीड़ पर गोली चलाने वाली सेना के आगे इस संन्यासी ने अपनी कठोर छाती को जनता की ढाल बना कर कहा था "यदि साहस हो तो चलाओ गोली" और तब? तब संगीनें नीचे झुक गई थीं, जनता के मस्तक झुक गये थे स्वामी श्रद्धानन्द के तप के आगे, त्याग के आगे।

आर्य जाति की घटती हुई संख्या को देखकर उन्होंने विधर्मियों के लिये वैदिक धर्म का द्वार खोल दिया। और कहा-सब आओ। कोई भय नहीं, कोई चिन्ता नहीं। यह तो सार्वभौम धर्म है, सबका अपना घर है, सर्वव्यापक भगवान् का मन्दिर है। इसमें बिचरो, भगवान् की प्रेम भरी वाणी को सुनो, सभी उस

अमर पिता के अमृत पुत्र हैं। उसकी गोद हमारे लिये सदा ही खुली है। ऋग्वेद में कहा है–

ओ३म् सः नः पितेव सूनवे अग्ने सूपायनो भव।

हे पितः ! आप हमें ऐसे सुगमता से मिलो जैसे पिता पुत्र को झटपट मिल जाता है।

भारत के जन–मन ने उसके इस आवाहन को सुना। उनके आमन्त्रण को स्वीकार किया। यवन और ईसाई अपना चोला बदलने लगे। पवित्र वैदिक धर्म में दीक्षित होने लगे। यह एक नवीनता थी, एक क्रान्ति थी। क्या एक विधर्मी भी हिन्दू बन सकता है? यवनों के कान खड़े हो गये। उन्हें तो दिन में तारे दिखाई देने लगे। उनके पैरों के नीचे की धरती डगमगाने लगी। स्वामी श्रद्धानन्द का शरीर उन्हें भयंकर सिंह के सदृश भयानक दृष्टिगोचर होने लगा। उन कायरों ने षड्यन्त्र किया। 23 दिसम्बर 1926 को महान् स्वामी जी का बलिदान हुआ।

दुष्टों की पाप योजना पूरी हुई। धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द ने इस नश्वर शरीर का परित्याग किया। परन्तु उनका श्रद्धारूपी शरीर आज भी जीवित जाग्रत ज्योति के समान जगमगा रहा है।

आयें, आज हम उस हुतात्मा के प्रति अपने भावों की श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए अपने जीवन क्षेत्रों को भी श्रद्धा के जल से सींच, तप–त्याग और बलिदान की खाद से हरा–भरा बनायें जिससे वैदिक–उद्यान की सुगन्धि बनाए।

आओ मिलकर जय बोलें सब श्रद्धानन्द महान् की।
युग–युग तक प्रेरणा जगायेगी गाथा बलिदान की।।

❀❀❀

खोल गुरुकुल वेदविद्या के प्रचार द्वारा,
गैल ब्रह्मचारियों को ज्ञान की गहा गये।
भूतल पै जीवन का सुयश पसार पूरा,
कर्मवीर धर्मसिंह साहसी कहा गये।।
अन्त को छिदाय छाती कायर की गोलियों से,
शुद्धि की समुन्नति पै शोणित बहा गये।
धन्य दयानन्द जी के शिष्य श्रद्धानन्द स्वामी,
शंकर की सत्ता में समाने को अहा गये।।

मानव–जीवन का आदर्श: रामायण की कथा और पात्र

लेखक: डॉ0 भवानीलाल भारतीय

रामायण की लोकविश्रुत कथा से मेरा परिचय प्राथमिक शाला में ही हो गया था जब हमने रामचरित मानस के धनुष–भंग–प्रसंग को पढ़ा। उसके पश्चात् तो मानस के अनेक प्रकरण उच्च कक्षाओं में पढ़े भी और पढ़ाये भी। राम–वनगमन जैसे मार्मिक प्रसंगों में अभिव्यक्त कवि का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अत्यन्त प्रभावशाली है। हम सीता को राम का संकेत पाकर केवट को अपनी मणियों से जड़ी अंगूठी देते देखते हैं, किन्तु केवट उसे लेने से इन्कार करता है। चित्रकूट में, वनवासिनी नारियों द्वारा सीता से राम और लक्ष्मण का परिचय पूछना और जनकनन्दिनी द्वारा अत्यन्त लज्जा एवं संकोच–भरी शैली में इन प्रियजनों का परिचय देना जितना स्वाभाविक है उतना ही मनोज्ञ भी।

हाईस्कूल की कक्षाओं में महाकवि केशवदास की 'रामचन्द्रिका' से परिचय हुआ। 'केसव केसनि अस करी। जस अरिहुं न कराहिं। चन्द्रवदनि मृगलोचनी बाबा कहि कहि जांहि।' श्रृंगार रस से चुहचुहाती इस पंक्ति के प्रयोक्ता केशव ने जिस अलंकार प्रधान काव्य 'रामचन्द्रिका' की रचना की है वह उनकी इस प्रतिज्ञा को सार्थक करती है–

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिना न राजहिं कविता बनिता मित्त।।

केशव के लिखे लक्ष्मण–परशुराम संवाद, रावण–अंगद संवाद अपनी वाग् विदग्धता, तर्कपूर्ण उक्तियों तथा वाचिक चमत्कारों के कारण पाठकों को विस्मय विमुग्ध करते हैं। मैंने संक्षिप्त रामचन्द्रिका को बी0 ए0 में पाठ्य–पुस्तक के रूप में अपने गुरु डॉ0 देवराज उपाध्याय से पढ़ा तथा गवर्नमेंट कालेज अजमेर की स्नातक श्रेणी के छात्रों को इस काव्य को पढ़ाने का अवसर भी मुझे मिला।

यों तो वेदों में भी राम, दशरथ, सीता, रावण, अयोध्या आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं किन्तु इनका प्रचलित रामायण–कथा के पात्रों से कोई सम्बन्ध नहीं है। महर्षि वाल्मीकि ही रामायण–कथा के आदि लेखक हैं और वे ही संस्कृत के आदि कवि तथा आर्ष काव्य प्रणेता भी हैं। रामायण के विषय में उनकी घोषणा है–

यावत् स्थास्यन्ति गिरवः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायण–कथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।

अर्थात् जब तक इस पृथ्वी पर पर्वत तथा नदियाँ हैं, तब तक रामायण की कथा का संसार में सदा प्रचार होगा। रामायण संस्कृत भाषा का मनुष्य निर्मित प्रथम लौकिक–काव्य है जिसमें विभिन्न रसों की धाराएँ प्रवाहित हुई हैं। रामायण के निर्माण में क्रौंच दम्पति के करुणापूर्ण वियोग की कहानी

कारण बनी। परदु:ख कातर महर्षि वाल्मीकि का करुणाद्रि हृदय चीख उठा। उनके अन्तस से जो करुणा का स्रोत फूटा, तो वह इस श्लोक के रूप में बह निकला–

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
सत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

यह श्लोक जब कवि के मुख से अनायास निकल पड़ा तो कवि को आभास हुआ कि इस रचना में कोई न कोई वैशिष्टय अवश्य है और ये उद्‌गार सामान्य कथन से भिन्न हैं। वस्तुतः कवि के हृदय का शोक ही श्लोक रूप में प्रकट हो गया था।

रामायण के इस कथानक को विभिन्न भाषाओं और काव्य रूपों में अभिव्यक्त किया गया। वाल्मीकीय रामायण भी पठित समाज में सर्वत्र सम्मानित हुई। इस पर संस्कृत में लगभग टीकायें लिखी गईं। आर्यसमाज के अनेक विद्वानों ने रामायण की टीका लिखी तथा उनके संक्षिप्त संस्करण भी तैयार किये। महामहोपाध्याय पं0 आर्यमुनि ने रामायण का आर्य भाष्य लिखा। पं0 श्रीपाद दामोदर सातवलेकर का अनुवाद मैंने तब पढ़ा जब मैं जोधपुर के सरदारपुरा मोहल्ले में रहता था। पं. चन्द्रमणि विद्यालंकार तथा पं. अखिलानन्द की टीकायें संक्षिप्त किन्तु आलोचनात्मक हैं जिनमे संक्षिप्तता के साथ-साथ प्रक्षिप्त स्थलों का विवेकपूर्ण विवेचन भी है। स्वामी जगदीश्वरानन्द द्वारा सम्पादित रामायण ने पाठकों में प्रचुर प्रचार प्राप्त किया।

रामकथा के आधार पर कतिपय दार्शनिक ग्रन्थ भी लिखे गये। इनमें 'योगवासिष्ठ' प्रमुख है। इस ग्रन्थ में कथा तो नाममात्र की ही है। किन्तु महर्षि वसिष्ठ द्वारा राम को दिये गये उपदेशों के संकलन को ही प्रमुखता दी गई है। योगवासिष्ठ पर शंकर के अद्वैतवाद का स्पष्ट प्रभाव है। पटियाला राज्य के पं0 रामप्रसाद निरंजनी ने 'भाषा योगवासिष्ठ' नामक गद्यग्रन्थ लिखा था। इसे खड़ी बोली हिन्दी का प्रथम गद्य ग्रन्थ स्वीकार किया गया है। ब्रह्माण्ड पुराणान्तर्गत अध्यात्म रामायण भी उच्चकोटि का दार्शनिक ग्रन्थ है जिसमें रामकथा की आध्यात्मिक व्याख्या की गई है। यह ग्रन्थ भी अद्वैतवाद का पोषक है।

रामायण में अद्‌भुत रस का समावेश करने के लिये 'अद्‌भुत रामायण' की रचना की गई। 'भुशुण्डी रामायण' की रचना सम्भवतः उस काल में हुई जब कृष्ण-भक्ति की मधुरासक्ति और दाम्पत्य प्रेम की धारा ने राम-भक्ति को भी प्रभावित किया और राम-कथा में रसिकता का समावेश हुआ। यह रामायण भागवत की कथा से प्रभावित है। इसलिये राम के चित्रकूट निवास के समय गोपियों से उनी रास क्रीड़ा दिखाने का लोभसंवरण करना लेखक के लिये कठिन हो गया है। ध्यातव्य है कि समीक्षा के क्षेत्र में राम के मर्यादावादी दृष्टिकोण को स्वीकार कर काव्य में लोकमंगल के विधान को आवश्यक मानने वाले पं0 रामचन्द्र शुक्ल ने राम-काव्य की इस रसिक धारा के कवियों की कटु आलोचना की है जिन्होंने राम के एकपत्नीव्रत को विकृत किया तथा सीता की अनेक सपत्नियों की कल्पना कर अपनी निरंकुशता का परिचय दिया।

–(शेष अगले अंक में)

ऋग्वेद ॥ ओ३म्॥ यजुर्वेद

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

श्री विरजानन्द ट्रस्ट, वेदमन्दिर–मथुरा में

चतुर्वेद पारायण यज्ञ

दिनांक 6 दिसम्बर 2020 से 25 दिसम्बर 2020 तक

सभी धर्मप्रेमी सज्जनो।

परमपिता परमात्मा हम लोगों के माता–पिता के समान हैं। हम सब उसकी प्रजा हैं इसलिए हम सब पर वह नित्य कृपादृष्टि रखता है। जैसे अपनी सन्तानों के ऊपर माता–पिता सदैव करुणा को धारण करते हैं। वह चाहते हैं हमारी सन्ताने सदा सुखी रहे, वैसे ही परमात्मा भी सब जीवों पर कृपादृष्टि सदैव रखता है। बिना ज्ञान के हमारा कल्याण कभी सम्भव नहीं है। इसलिए सृष्टि के आदि में ईश्वर ने अपने ज्ञान ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद का प्रकाश चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा के मन में किया फिर उन्होंने सब भूगोल में वेद विद्या को फैलाया। जिनको पढ़–पढ़ा और सुन–सुना के हमारे पूर्वज ऋषि–मुनियों ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को प्राप्त किया, उससे परम ज्ञान प्राप्त करके अपने मानव जीवन को धन्य कर गये। इसी प्रकार सबका जीवन धन्य हो इस परोपकार को ध्यान में रखकर आपके अपने श्री विरजानन्द आर्ष गुरुकुल वेद मन्दिर, मथुरा में विगत 13 वर्षों से प्रतिवर्ष चतुर्वेद पारायण यज्ञ का आयोजन रखा जाता है। विद्वानों के प्रवचनों से वेद–ज्ञान की प्राप्ति और साथ में यज्ञ में पवित्र सामग्री से वातावरण शुद्धि का उपाय किया जाता है। इस वर्ष भी आयोजन 6 दिसम्बर से 25 दिसम्बर 2020 तक निर्धारित किया है। धार्मिक कार्य सर्वसाधारण के कल्याण की कामना को करके आयोजित किये जाते हैं। यदि उनमें सभी सज्जनों का सहयोग न हो तो उनका पूरा होना असम्भव है यदि सम्भव हो भी जाय तो सबका उपकार न होने से निरर्थक भी है। इस आयोजन की सार्थकता आप सबके ऊपर ही है क्योंकि आपके लिए है और आप सबका है। इस बात को ध्यान में रखकर अपना पावन दायित्व समझ कर स्वयं यजमान बनें और अन्य सज्जनों को प्रेरित कर पुण्य लाभ कमायें। कार्यक्रम प्रतिदिन दो सत्रों में चलेगा प्रातः 9.00 बजे से 12.00 बजे तक और दोपहर बाद 2.00 बजे से 5.00 बजे तक। आप किसी भी दिन किसी भी सत्र में यजमान बन सकते हैं। यजमान बनने के इच्छुक अपनी तिथि पहले से ही लिखवा दें तो उत्तम रहेगा। यज्ञ में निरन्तर रहने वालों के लिए आवासीय व्यवस्था आश्रम में ही रहेगी।

सम्पर्क सूत्र: 9456811519

निवेदक

(अध्यक्ष)	(मंत्री)	(अधिष्ठाता)
डॉ. सत्यप्रकाश अग्रवाल	बृजभूषण अग्रवाल	आचार्य स्वदेश

गुरुकुल में आने के लिए मथुरा आकर वृन्दावन जाने वाले वाहनों से मसानी चौराहे पर उतरें, पूर्व की ओर जाने वाले मार्ग पर मात्र 200 कदम पर वेदमन्दिर है।

सामवेद अथर्ववेद

अपने घर में वापस आने के द्वार बन्द थे। स्वामी जी ने साहस कर शुद्धि सभा की स्थापना कर लाखों भाईयों को पुनः आर्य धर्म में दीक्षित किया और उन्हें उनका पुराना सम्मान फिर दिलवाया। काशः उस समय के हिन्दू नेता और हिन्दू धर्म के ठेकेदार आचार्य और पण्डित लोग स्वामी श्रद्धानन्द के उद्देश्य को समझ लेते और उदारभाव से स्वामी श्रद्धानन्द का साथ देते तथा अपने हिन्दू भाईयों की संकीर्ण भावना उदार कर लेते तो पाकिस्तान का नामोनिशान नहीं होता और लाहौर से लेकर ढाका तक ओम् पताका का निर्विघ्न फहराती। परन्तु दुर्भाग्य इस देश और जाति का रहा कि इसने कभी अपने हितैषी की ठीक-ठीक पहचान नहीं की। हिन्दुओं ने अपने उपकार करने वालों का साथ देना तो दूर रहा अपितु यहाँ तक विरोध किया उन सबके जीवन को समाप्त करने का मुख्य कारण भी बने। जिसका दुष्परिणाम जम्मू-कश्मीर और पाकिस्तान की सीमा पर नित्य जवानों की कुर्बानी देकर चुकानी पड़ रही है।

यदि हमने स्वामी श्रद्धानन्द की बात मानकर गुरुकुलीय परिवेश में अपनी सन्तान को पाला होता तो लव-जिहाद जैसे कुचक्रों में हमारे बच्चे फंसकर अपने जीवन का सर्वनाश क्यों करते? इतने बलात्कार, चोरी, डकैती, मारकाट क्यों होती? आज ऐसा भययुक्त वातावरण क्यों होता? हम आज भी चेतावनी देते हैं कि महर्षि दयानन्द महाराज और स्वामी श्रद्धानन्द की बात पर ध्यान नहीं दिया तो अपने बच्चों को अपनी संस्कृति में न पाला तो देश, समाज और परिवार की दुर्दशा को कोई नहीं बचा सकता। 23 दिसम्बर को श्री स्वामी श्रद्धानन्द दिवस को हम सकल्प लें कि हम अपनी संतानों को वासना का कीड़ा बनने से रोकेंगे। वैदिक धर्म में दीक्षित कर राष्ट्र का एक उत्तरदायी नागरिक बनाकर तैयार करेंगे। विशेषकर हम उन वैभव सम्पन्न भाईयों से कहना चाहते हैं कि थोड़ा अपनी अय्याशियों को कम कर देश में चल रहे निर्धन गुरुकुलों को धन देकर सम्बल प्रदान करने में लगायें अन्यथा यवन-ईसाई अधिक बढ़ गये तो सारे संसार का ही सर्वनाश निश्चित है। अतः संकल्प लें हम नित्य स्वाध्याय और आत्म चिन्तन करेंगे, जाति प्रथा को समूल नष्ट करेंगे और अपने धन को पवित्रतम कार्यों में व्यय करेंगे तभी आपका और राष्ट्र का कल्याण होगा। महापुरुषों के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। हम में से कुछ अधिक शिक्षित और तथाकथित उदारचेता लोग इस भूल में हैं कि हम अपनी उदारता से सभी सम्प्रदायों में भाईचारा लाकर समरसता लायेंगे। पर वे भूल जाते हैं कि उन मजहबी लोगों की पुस्तकों में तुम्हें मिटाने के पाठ ही पढ़ाये जाते हैं। तुम जब तक बलवान हो तभी तक वे भाईचारा मानेंगे, तुम्हारे निर्बल पड़ते ही तुम्हारी गर्दनें उनके हाथों में होंगी और तुम्हारी उदारता सिर पकड़ कर रोयेगी। इसलिए सबके कल्याण की कामना करते हुए भी अपना बल बढ़ाना ही धर्म है। यही स्वामी श्रद्धानन्द का मन्तव्य था। ❁

R.N.I. No. 2321/57
दिसम्बर 2020

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 004/2019-21
अंक 11

तपोभूमि

मासिक

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

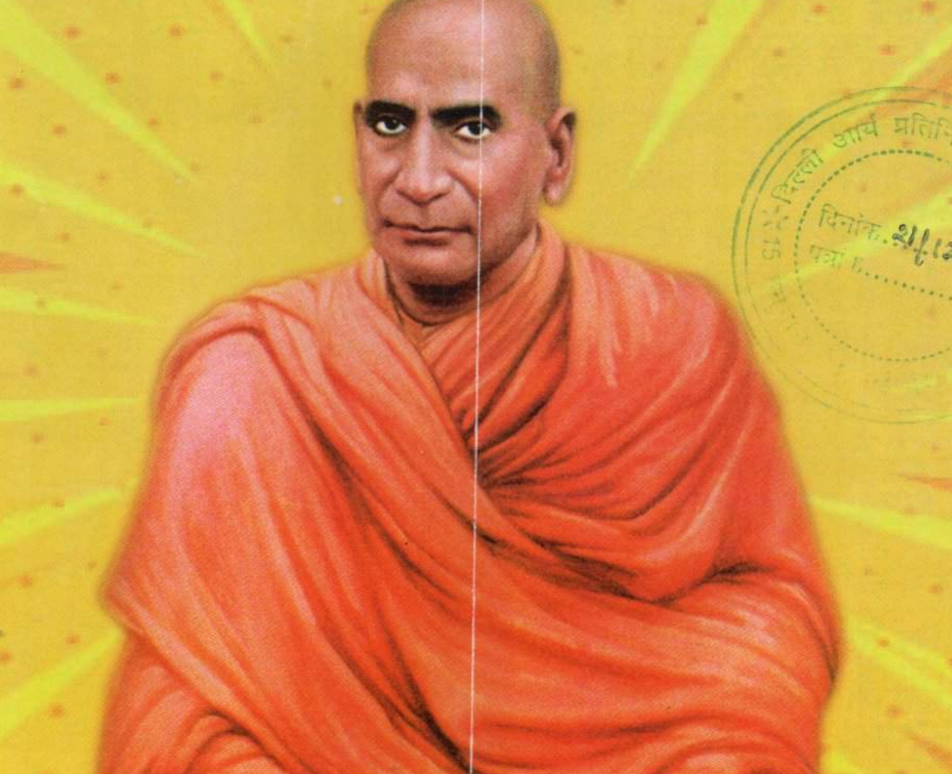

अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती
(1856–1926)
23 दिसम्बर बलिदान दिवस